भीष्म ।

नाटक.

विश्वम्भरनाथ शर्मा, कौशिक.

प्रताप-पुस्तक-माला का ८ वां ग्रंथ

खेलने योग्य नाटक

लेखक,

विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक

प्रकाशक,

शिवनारायण मिश्र

प्रताप कार्यालय,

कानपुर।
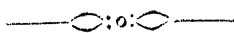
प्रताप-प्रेस, कानपुर में मुद्रित।

प्रथम संस्करण २००० | १९१८ ई० | मूल्य आठ आने।

प्रकाशक,
शिवनारायण मिश्र,
प्रताप कार्य्यालय-कानपुर

मुद्रक,
गणेश शङ्कर विद्यार्थी,
प्रताप प्रेस-कानपुर

चन्द्र सूर्य्य टल जांय और ध्रुव भी टल जाये,
हिले शेष का शीश और अचला चल जाये।
छूट जगह से टूट फूट नभ मण्डल जाये,
कमलासन से कमल, कमल से हट जल जाये॥
जमा जहाँ पर जमा अब पैर फिसल सकता नहीं।
क्षत्रिय देवव्रत कभी व्रत से टल सकता नहीं॥

प्रताप-पुस्तक-माला।

———:०:———

हमने अपने यहां से उक्त ग्रंथमाला निकालना शुरू की है। हमारी इच्छा है कि इसमें उच्च कोटि की पुस्तकें कम मूल्य में प्रकाशित हों। हमारा उद्देश्य, हमारी नीति के अनुसार देश में राजनैतिक साहित्य का प्रसार करना होगा। यह ग्रंथमाला अपने ढंग की अद्वितीय होगी। इसके ग्राहकों को प्रारम्भ में केवल आठ आना 'प्रवेश फी' भेजना होती है। जो सज्जन जब अपना नाम कटाना चाहेंगे उनको यह रक़म लौटा दी जायगी। स्थायी ग्राहकों को पहले निकली हुई और आगे निकलने वाली सब पुस्तकें मूल्य में एक चौथाई कम करके मिलेंगी। पहले की पुस्तकें लेना न लेना ग्राहक की इच्छा पर है, परन्तु आगे निकालने वाली पुस्तकें अवश्य लेनी होंगी। अब तक ये पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं:—

१	मेरे जेल के अनुभव (ले० महात्मा गांधी)	।=)
२	देवीजोन अर्थात् स्वतन्त्रता की मूर्ति	॥)
३	भारत के देशी राष्ट्र	॥।)
४	राष्ट्रीय वीणा (प्रताप की कविताओं का संग्रह)	॥)
५	जर्मन जासूस की राम कहानी	।-)
६	युद्ध की कहानियां	।)
७	कृष्णार्जुन युद्ध (नाटक)	॥=)
८	भीष्म (नाटक)	॥)

इसके सिवाय राज्य-क्रान्ति के बलिदान," उद्योगी पुरुष, आदि पुस्तकें तैयार हो रही हैं। माला के उक्त ग्रंथों को छोड़ हमारी छपाई अन्य पुस्कें कम मूल्य पर नहीं दी जातीं।

मैनेजर—'प्रताप'-कानपुर।

नाटक के पात्र

(पुरुष)

द्योवसु—अष्ट वसुओं में से एक

राजा शान्तनु—भारत सम्राट।

देवव्रत, भीष्म—गंगा के गर्भ से उत्पन्न राजा शान्तनु का पुत्र, द्योवसु का अवतार।

दासराज—एक धीवर, सत्यवती का पिता।

काशिराज—काशी का राजा, अम्बा इत्यादि का पिता।

शाल्वराज—अम्बा का प्रेमिक।

विचित्रवीर्य—सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न राजा शान्तनु का पुत्र, राज्य का उत्तराधिकारी।

परशुराम—ऋषि, भीष्म के गुरू।

युधिष्ठिर, भीम अर्जुन, सहदेव नकुल,—पञ्च पाण्डव

शिखण्डी—राजा द्रुपद का पुत्र, अम्बा का अवतार।

दुर्योधन—धृतराष्ट्र का पुत्र।

सीताराम—एक पण्डित।

गोवर्धन दास—सीताराम का साला।

कृष्ण—अर्जुन के मित्र, द्वारिका के राजा।

दास, मंत्री, योद्धा, वशिष्ठ गुरु, सप्तवसु इत्यादि इत्यादि

नाटक के पात्र
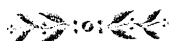
(स्त्री)

गंगा—राजा शान्तनु की स्त्री, भीष्म की माता।

सत्यवती—दासराज की कन्या, विचित्र वीर्य की माता।

अम्बा—काशिराज की कन्या, शाल्वराज की प्रेमिका।

अम्बिका, अम्बालिका—काशिराज की कन्यायें, अम्बा की छोटी बहनें।

चम्पा, शान्ता } राजा शान्तनु की दासियां।

चपला, रम्भा } सत्यवती की सखियां।

चञ्चला—सीताराम की स्त्री।

दासियां, द्योवसु की रानी, सखियां, सहेलियां, तथा गाने वालियां इत्यादि।

निवेदन
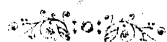
यों तो हिन्दी में नाटकों का प्रायः अभाव सा ही है किन्तु जो कुछ इने गिने नाटक दिखाई पड़ते हैं, उन में भी अधिकांश ऐसे हैं कि जिनका नाटकपन केवल पुस्तक के पृष्ठों तक ही परिमित है, अर्थात वह स्टेज पर खेलनेयोग्य नहीं। यदि नाटक स्टेज पर खेलने योग्य न हुआ तो उसमें और एक उपन्यास में बहुत कम भेद रह जाता है। इसी लक्ष्य को सामने रख कर हमने इस नाटक को स्टेज के लिये ही लिखा है अर्थात इस को इस योग्य बनाने की चेष्टा की है कि यह स्टेज पर सफलता पूर्वक खेला जा सके और इस कारण इस में विद्वान पाठकों को साहित्यिक दृष्टि से त्रुटियां मिल सकती हैं: किन्तु उनके लिए हम, अपने उपरोक्त वाक्यों के बल पर, पाठकों से क्षमा मांगने का साहस कर सकते हैं।

विनीत

बङ्गाली मुहाल, कानपुर।
रथयात्रा, १९७५

विश्वम्भरनाथ शर्म्मा
कौशिक

भीष्म

[नाटक]

(सहेलियां ईश्वर का भजन करती हैं)

जय जय विश्वपती जगकारी।
तोरी करतारी पर वारी-जय जय विश्वपती जगकारी ॥
अन्तर्यामी घट घट वासी,
अजर अमर तू, तू अविनाशी,
आदि है तूही, तूही अंत है-तूही प्रलयकारी; जय जय०॥
नटवर नागर लोक-उजागर,
गुणागार करुणा के सागर,
दीनानाथ तू प्राणअधार तू-भक्तन हितकारी; जयजय०॥
गिरिधारी, मुरलीधारी, तेरो गुण गावें सब नरनारी।
जय जय विश्वपती जगकारी ॥

—:०:—

पहला अङ्क ।

पहला दृश्य ।

स्थान-द्योवसु के भवन का एक भाग ।

[द्योवसु और द्योवसु की रानी का प्रवेश]

गाना ।

रानी—नाथ जाओ मोहे अधिक न सताओ,
अधिक न सताओ, मेरा जी न दुखाओ; जाओ० ॥
द्योवसु—दुख क्या है तुमको कुछ तो बताओ भरती हो
क्यों ठंढी साँस ?
रानी-वाह !
द्योवसु—भरती हो क्यों ठंढी सांस ?
रानी—चलो हटो जाओ क्यों करते हो मुझ से तुम उपहास,
द्योवसु—कैसे बात तुम्हारी मानूँ, कैसे तुमको सच्चा जानूँ,
देखो अपना मुख तो ज़रा कितना है उदास ।
रानी—सच!! झूठी सारी बातें तुम्हारी,
द्योवसु—मनकी बात हमसे न छिपाओ ।
रानी—नाथ जाओ मोहे अधिक न सताओ ॥

द्योवसु—प्रियतमे, मैं तुम्हारी एक न मानूँगा । देखो, तुम्हारे
मुख पर वह नित्य की सी प्रसन्नता नहीं; वह चैत-

न्यता नहीं। भीतरी दुख के ऐसे प्रबल प्रमाण होते हुए भी हृदय की बात छिपाती हो; मुझे चुटकियों में उड़ाती हो?

रानी—(मुसकरा कर) तुम तो अकारण ही बात का बतंगड़ बनाते हो-मुझे वृथा कलंक लगाते हो।

द्योवसु—बात का बतंगड़ नहीं; मैं जो कुछ कहता हूँ वह सत्य कहता हूँ। देखो, तुम्हारे जी में जो हो वह स्पष्ट कहो। मैं तुम्हारे लिए सब कुछ करने को तय्यार हूं।

तुम्हारे सामने आँखें निकाल कर धर दूं।
हृदय को चीर दूं अपने, व काट कर सर दूं॥
कहो तो इन्द्र के आसन को एक टक्कर दूं।
ये लोक जितने हैं सब को उलट पुलट करदूं॥
तुम्हारे वास्ते सब कुछ हूँ करने को तय्यार।
कष्ट क्या है तुम्हें बताओ तो ऐ भोली नार॥

रानी—रहने दो जाओ क्यों बातें बहुत बनाते हो।
समझ के भोली मुझे खूब रङ्ग जमाते हो॥
अकड़ते हो बहुत बल वीरता जताते हो।
परन्तु दृष्टि में मेरी न कुछ भी आते हो॥
बररते हैं जो बहुत, काम हैं वह करते कहीं?
कहावत है जो गरजते हैं वह बरसते नहीं॥

द्योवसु—तो क्या विनती कराओगी; हाथ पैर जुड़वाओगी?

रानी—जब तक मेरी इच्छा पूरी करने की प्रतिज्ञा न करोगे तब तक मेरे हृदय की बात न सुन सकोगे।

द्योवसु—ऐं, प्रतिज्ञा!

रानी—हां, प्रतिज्ञा।

द्योवसु—और जो मैं पूरी न कर सका?

रानी—तो फिर किसी लिए इतनी लम्बी चौड़ी बातें सुनाते हो ? वाह ! क्या मुझे बनाते हो ?

द्योवसु—(स्वगत) बिना प्रतिज्ञा किये यह अपने जी की बात न बतायेगी। अच्छा, इस समय प्रतिज्ञा करके इसे प्रसन्न करलूँ, फिर जो कुछ होगा देखा जायगा। (रानी से) अच्छा प्यारी, मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करने की प्रतिज्ञा करता हूँ।

रानी—(प्रसन्न होकर) प्रियतम, तुम गौ नन्दिनी को तो जानते होगे ?

द्योवसु—कौन ? वशिष्ट मुनि की गौ नन्दनी ?

रानी—हां, वही नन्दिनी। उसने मेरा मन मोह लिया है। यदि मुझे प्रसन्न करना चाहते हो तो उसे लाकर मुझे दो।

द्योवसु—अरे ! वशिष्ट की गौ तुम्हें लाकर दूं ?

रानी—हां, मुझे लाकर दो।

द्योवसु—किन्तु यह तो मेरे लिए बिल्कुल असम्भव है।

रानी—(रूठ कर) वाह ! तो कहो न, फिर प्रतिज्ञा किस बिरते पर की थी ?

द्योवसु—अरे तो मैं क्या जानता था कि तुम ऐसी टेढ़ी बात कहोगी। प्यारी, वशिष्ट को अपनी गौ प्राणों से भी अधिक प्यारी है, फिर भला मैं कैसे कहूं कि उसे तुम्हारे लिए ला सकूंगा—अपना वचन निभा सकूंगा।

रानी—तो जाओ, अब मुझ से न बोलना। (चली जाती है)

द्योवसु—(स्वगत) अब क्या करूं ? बिना नन्दिनी लिए प्राणप्यारी का चित्त ठिकाने न आयगा और

मुझ से भला उसका दुख कैसे सहा जायगा ?... तो अब क्या उपाय करना चाहिए ? प्यारी का दुख कैसे हरना चाहिए ? (सोच कर) हां, यही ठीक है। जाता हूं और घात पाकर मुनि के आश्रम से नन्दिनी चुराये लाता हूं।

(प्रस्थान)

——:o:——

पहला अङ्क ।

दूसरा दृश्य ।

स्थान--वशिष्ठ का आश्रम ।

[आश्रम में गौ बंधी हुई है और वशिष्ठ मुनि ईश्वर-भजन कर रहे हैं]

गाना ।

वशिष्ठ——निशदिन सुमरन वाकी करना ।
काम,क्रोध,मद, लोभ से डरना ॥ निश दिन० ॥
माया मोह के फन्द काट के ।
आत्म-ज्ञान को चित में धरना ॥ निश दिन० ॥
ब्रह्मज्ञान की नाव पे चढ़ के ।
भवसागर के पार उतरना ॥ निशदिन सुमरन० ॥

वशिष्ठ—(स्वगत) आज बड़ी देर हो गई, अभी तक नन्दिनी को जल न पिलाया। अच्छा, अब पहले इसे जल पिला दूं तब और कुछ करूं ।

(जल के लिए पात्र लेकर प्रस्थान)

(द्योवसु का प्रवेश)

द्योवसु—(स्वगत) अहा ! आश्रम सूना पड़ा है; भाग्य सहायता के लिए हाथ जोड़े खड़ा है। किन्तु—किन्तु, मैं यह क्या कर रहा हूं ? चोरी ! उफ़ ! कितना घृणित काम है; इसका बुरा परिणाम है। नही, नहीं, मैं खोटा काम कभी न करूंगा; अपने सिर पर यह कलंक न धरूंगा। (लौटता है, किन्तु फिर रुक जाता है) परन्तु, प्राणप्यारी को उत्तर क्या दूंगा ? मुझे विश्वास है कि वह नन्दिनी बिना प्राण त्याग देगी। उफ़ ! उस की मोहनी मूर्ति मेरी आँखों के सामने है और मुझे इस काम के लिए उत्तेजित कर रही है। हा ! स्त्री-प्रेम कितना प्रबल है ? इसमें फँस कर सारा ज्ञान दूर हो जाता है, सब अभिमान चूर हो जाता है। दूर हो, दूर हो, मुझे इस कार्य से रोकने वाले विचार-समूहो दूर हो। मुझे आगे क़दम धरने दो; हृदयेश्वरी का काम करने दो। (मुनि के आने की आहट सुनाई पड़ती है) ऐं......कोई आता है। मुझे शीघ्रता करनी चाहिए—इसी समय या कभी नहीं। यदि अवसर हाथ से निकल जायगा तो हाथ मलने के सिवा और कुछ हाथ न आयगा।

(नन्दिनी को ले जाता है)

(जल लिये हुए वशिष्ठ का प्रवेश)

वशिष्ठ—(स्वगत) हा ! आज नन्दिनी ने जल के बिना बड़ा कष्ट पाया।

(नन्दिनी के स्थान पर जा कर उसे सूना पाते हैं)

वशिष्ठ—(स्वगत) ऐं ! नन्दिनी कहां गई ? अभी तो मैं उसे यहां ही छोड़ गया था । वह स्वयम् तो आश्रम छोड़ कर जाने वाली नहीं । (इधर उधर देख कर) इधर तो कहीं नही दिखाई पड़ती।······ओह ! अब मैं समझा। अवश्य यह किसी दुष्ट की छलना है । अच्छा, देखूँ तो । (आँखें बन्द करके कुछ क्षण पश्चात) दुष्ट,पापी, कुकर्मी,द्योवसु,द्योवसु,मेरे साथ ऐसा दुर्व्यवहार-- ऐसा अत्याचार !!

हुआ स्त्री के वश ऐसा कि कर बैठा यह खोटा काम ।
न कुछ भी मेरा भय माना न सोचा अपना कुछ परिणाम ॥

ओह ! तू इतना निडर; इतना ढीठ !! मैं समझा । काम क्रोध ने इन वसुओं की सुमति पर परदे डाल दिये हैं । ये इतने मदांध हो गये हैं—अहंकार में इतने भर गये हैं, कि इनमें विवेक नहीं रहा । यदि इनका अभिमान चूर न किया जायगा तो इनका साहस बढ़ जायगा । अच्छा, दुष्टो, (हाथ में जल लेकर) मैं तुम्हें शाप देता हूं कि तुम मृत्युलोक में जन्म लेकर जीवन मरण का दुःख भोगो ।
(सात वसुओं का प्रवेश)

सब—त्राहिमाम, त्राहिमाम, मुनिवर त्राहिमाम ।

वशिष्ठ—जाओ । दुष्टो, कर्म्मों का फल भोगो ।

सब—क्षमा, नाथ क्षमा ।

वशिष्ठ—असम्भव ! मेरा शाप पूरा होकर रहेगा ।

(सब जाते हैं)

वशिष्ठ—(स्वगत) सब तो आये किन्तु वह दुष्ट अहंकारी नहीं आया। (हाथ में जल लेकर) जा दुष्ट, मृत्युलोक में तू अधिक काल तक रहेगा।

(द्योवसु आ कर वशिष्ठ के चरणों में गिर जाता है)

द्योवसु—नाथ, मुझ से बड़ा अपराध हुआ; क्षमा कीजिए।

वशिष्ठ—क्षमा! इतना बड़ा पाप करके क्षमा चाहता है!!

द्योवसु—स्वामी, मैं स्त्री के कहने में आकर यह अपराध कर बैठा।

हुआ अपराध मुझ से नाथ है यद्यपि बड़ा गुरुतर।
क्षमा की दीजिए भिक्षा, दयामय आप हैं मुनिवर॥

वशिष्ठ—क्षमा अब चाहता है पाप तू इतना बड़ा करके!
क्षमा तू चाहता है दुष्ट मेरी नन्दिनी हरके!!
जा दुष्ट! तूने स्त्री के वश हो कर यह पाप किया है अतएव तू मृत्युलोक में स्त्री से वञ्चित रहेगा।

द्योवसु—हा भगवान! (शोक से व्याकुल होकर गिर पड़ता है)

पहला अङ्क।

तीसरा दृश्य।

स्थान—रास्ता।

[गंगा सहित अष्ट वसुओं का प्रवेश]

एक वसु—देवि गंगे, अब हमारा उद्धार तुम्हारे ही हाथ है। यदि तुम कृपा करोगी तो हमारा कष्ट दूर हो जायगा।

हमारी डूबती नौका तुम्हीं बस अब सँभालोगी।
जो तुम चाहोगी मुनि के शाप से हमको बचालोगी॥

गंगा—वत्स, वशिष्ठ मुनि के शाप को टाल देने की शक्ति मुझ में तो क्या विष्णु भगवान में भी नहीं। जो कुछ उन्होंने कहा है वह अवश्य पूरा होगा।

दूसरा—तो मात, क्या हमारे त्राण का कोई उपाय नहीं?

गंगा—नहीं वत्स, कोई नहीं।

न उनके शाप में आयेगा अंतर एक तिल भर भी।
कहा जो कुछ कि मुनि ने है वह है बस लीक पत्थर की॥

तीसरा—तो क्या हमको मृत्युलोक में जन्म लेना ही पड़ेगा?

गङ्गा—निस्सन्देह। यह दुख सहना ही पड़ेगा।

पहला—जब यह बात है तो हमारी लाज तुम्हारे हाथ है। माता, तुम्हें हमारी एक प्रार्थना स्वीकार करना पड़ेगी; हमारी चिंता हरना पड़ेगी।

गंगा—कहो, पुत्र कहो; तुम्हारे लिए मुझ से जो हो सकेगा मैं उससे कदापि मुँह न मोड़ूंगी—ऐसे समय में तुम्हारा साथ कभी न छोड़ूंगी।

पहला—देवि, हमारी यह प्रार्थना है कि तुम मृत्यु लोक में हमारी माता बनो और हमारा जन्म होते ही हमें नष्ट कर डालो। ऐसा होने से मुनि का शाप भी पूरा हो जायगा और हमें शीघ्र ही मोक्ष भी मिल जायगी।

दूसरा—यह युक्ति तो बड़ी सुन्दर है। निस्संदेह हमारा छुटकारा इसी पर निर्भर है।

गंगा—तथास्तु! तथास्तु!!

(गङ्गा का प्रस्थान)

द्योवसु—(ठंडी साँस भर के) हा भगवान !

पहला वसु—क्यों द्योवसु, अब क्यों चिन्ता करते हो ? क्यों ठंढी साँसे भरते हो ? अब तो मोक्ष की युक्ति भी निकल आई ।

द्योवसु—किन्तु, मेरी इस में है क्या भलाई ?

दूसरा—तुम्हारी यह बात हमारी समझ में न आई ।

द्योवसु—भाइयो, मुझे तो मुनि ने मृत्युलोक में अधिक काल तक रहने का शाप दिया है न ?

तीसर—तो फिर ?

द्योवसु—फिर क्या ? देवि गंगा मुझे जन्मते ही कैसे नष्ट कर सकती हैं ? यदि ऐसा किया जायगा तो मुनि के शाप में अन्तर आ जायगा ।

(सब हँसते हैं)

पहला—हा—हा । द्योवसु बुरा फँसा ।

दूसरा—भाई अपराध भी तो इसी ने किया; हम सब तो अकारण ही गेहूँ के साथ घुन की तरह पिस गये !

तीसरा—निश्चय । हमारे फँसने का कारण यही है ।

(सब द्योवसु को धिक्कारते हैं)

गाना (कोरस)

सातोवसु—तेरे कारण यह दुख पाया ।
तूने है हम सब को फँसाया ॥
ऐसा स्त्री ने भरमाया ।
समझ में कुछ परिणाम न आया ॥ तेरे कारण० ॥

द्योवसु—-जैसा किया वैसा फल पाया ।
पाप ने मुझ को नीचे गिराया ॥

सातो वसु—तूने यह दिन दिखलाया, मृत्युलोक में भिजवाया ।

द्योवसु——क्षमा करो अब मुझको भाई।
जैसा किया वैसा भर पाया॥ तेरे कारण यह दुख०॥

——:o:——

पहला अङ्क ।

चौथा दृश्य ।

स्थान—वन; गङ्गा का तट।

(राजा शान्तनु का प्रवेश ।)

शान्तनु—(स्वगत) आज तो शिकार की खोज में घूमते घूमते बड़ा समय बीत गया, किन्तु फिर भी कोई शिकार न मिला। अब क्या करूं? क्या महल की ओर लौटूं? (अपने चारों ओर देख कर) अहा, कितना रमणीक स्थान है। जाह्नवी का तट, मन्द मन्द वायु के झोंके, वृक्षों और लताओं का झुरमट, पानी का कलकल नाद, पक्षियों की चहचहाहट। मेरा हृदय इस स्थान का आनन्द लेने के लिए मचल रहा है।......कुछ देर यहां विश्राम करूं; गर्मी के मारे शरीर जल रहा है। (राजा शान्तनु एक शिला पर बैठ जाते हैं।) अहा, कितनी ठंढी हवा है। इसके झोंके मुझे थपक थपक कर सुलाने की चेष्टा कर रहे हैं।

(दूसरी शिला के सहारे लेट कर अर्द्धनिद्रित हो जाता है)

(गङ्गा जल से निकलती है)

गंगा—(शान्तनु की ओर देख कर) यही है। भारतवंश का मुख उज्ज्वल करने वाला भारत-सम्राट, शान्तनु, यही है।

अष्टवसुओं के उद्धार के लिए मैंने इसी को अपना सहायक माना है। मृत्युलोक में अपना पति बनाने के योग्य मैंने इसी को जाना है। मेरे और इसके संयोग से अष्टवसुओं का उपकार होगा--उनका उद्धार होगा।

भारत को सम्राट यह, भरतवंश को प्राण।
याही के सहयोग से, मिलै वसुन को त्राण॥

(राजा करवट लेता है)

गंगा—जाग रहा है; जाग रहा है। [दूसरी ओर मुँह करके खड़ी हो जाती है]

(शान्तनु उठकर बैठ जाता है)

शान्तनु—(आँखें मलते हुए—स्वगत] ओफ़, मैं बहुत सोया। [गंगा को देखकर] ऐं, यह कौन? यह तो कोई स्त्री मालूम होती है। ऐं! स्त्री! इस वन में! और अकेली! यह कैसा रहस्य है? [उठकर खड़ा हो जाता है] निस्सन्देह, स्त्री ही है। किन्तु, यहां क्यों आई; कैसे आई? (धीरे धीरे पास आकर) इस से पूछना चाहिए। (गंगा से) सुन्दरी, तुम कौन हो? इस वन में अकेली क्यों घूम रही हो?

(गंगा शान्तनु की ओर देखती है और मुसकरा कर दूसरी ओर मुँह फेर लेती है)

शान्तनु—(स्वगत) उफ़, कितना अलौकिक रूप! कैसा अपूर्व सौन्दर्य!! यह रूप मेरी आँखों के लिए बिल्कुल नया है; इस सौन्दर्य ने मेरा हृदय छीन लिया। हा! इसकी मन्द मुसकान ने मुझे अधीर कर दिया।

मनको मेरे फँसा लिया इसने।
क्षण में बेकल बना दिया इसने॥

दर्द पैदा किया कलेजे में ।
कौन जाने कि क्या किया इसने ?

(कुछ और निकट जाकर) मृगनयनी, तुम कौन हो ? देव-कन्या अथवा नाग-कन्या ? मनुष्य की सन्तान या किसी गंधर्व के वंश की प्राण ?

गंगा—महाराज, पहले आप तो बतावें कि आप कौन हैं ?

शान्तनु—चन्द्रमुखी, मुझे लोग राजा शान्तनु कहा करते हैं ।

गंगा—अच्छा ! भारत के पराक्रमी राजा शान्तनु आपही हैं ? महाराज, मेरे बड़े सौभाग्य जो आपका दर्शन मिलाः-

घड़ी है आज की शुभ, जो सुअवसर हाथ यह आया ।
ये आंखें धन्य हैं मेरी जो दर्शन आप का पाया ॥

शान्तनु—मेरा परिचय मिल गया तुमको ऐ बाम ।
अब कुछ अपना भी बताओ नाम ग्राम ॥

गंगा—महाराज, धैर्य धरो । इतना न घबराओ । समय आयगा जब आपको मेरा परिचय मिल जायगा ।

शान्तनु—किन्तु इस समय बताने में क्या कुछ सोच विचार है ?

गंगा—हां, कुछ ऐसाही व्यापार है ।

समय अनुकूल पाकर अपना परिचय मैं बताऊंगी ।
हृदय की आपके शंकायें मैं सारी मिटाऊंगी ॥

शान्तनु—परन्तु इस बन में अकेली घूमने क्यों आई ? साथ की सखी सहेलियां कहां गँवाई ?

गंगा—सखी सहेली कोई नहीं लाई, अकेली ही चली आई ।

शान्तनु—(स्वगत) इसे मैं जितना ही अधिक देखता हूं उतना ही मेरा हृदय इसकी ओर खिंचता है; इसके सौन्दर्य रूपी जल से प्रेम रूपी वृक्ष सिंचता है । यह मूर्ति हृदय-मन्दिर की शोभा बढ़ाने वाली, विरह हूक घटाने

थाली, राजमहलों को सजाने का सामान, गुणों के रत्नों की खान है। मुझे अब चैन तभी आयगा जब मेरा और इसका पति-पत्नी का सा सम्बन्ध हो जायगा। परन्तु अपने हृदय की बात इस से कैसे कहूं ?.........हां, कुछ भूमिका उठाऊँ। (गंगा से) कमलाक्षी, तुमने अद्वितीय रूप पाया है। ईश्वर ने तुम्हें अपने हाथ से बनाया है।

गंगा—अजी, आप तो मुझे लज्जित करते हैं।

शान्तनु—नहीं, ऐसा कुछ नहीं। सच कहता हूं; कामिनी, तुम्हारे मुख-कमल पर मेरा हृदय-भ्रमर लोट-पोट हो रहा है।

गंगा—किन्तु, इन चिकनी चुपड़ी बातों से आपका तात्पर्य ?

शान्तनु—तात्पर्य यही कि मेरे साथ चलो और मेरी रानी बनकर राजमहल को आलोकित करो।

बिना तुम्हारे राजमहल सूना है मेरा।
चन्द्र बिना ज्यों निशि में रहता गगन अँधेरा॥

गंगा—ठहरिए। राजन्, जल्दी न कीजिए। मुझे सोचने का अवसर दीजिए। (सोचती है) हां, मैं आपकी अर्द्धाङ्गिनी बनने को तय्यार हूं। किन्तु..........

शान्तनु—किन्तु क्या ?

गंगा—यही कि आपको एक प्रतिज्ञा करना पड़ेगी।

शान्तनु—प्रतिज्ञा ! कैसी प्रतिज्ञा ?

गंगा—यह कि आप मेरे किसी भी भले बुरे काम में बाधा न डालिएगा। मेरी जो इच्छा होगी वह करूँगी।

शान्तनु—और यदि कभी ऐसा हो गया ?

गङ्गा—तो जिस दिन ऐसा संयोग होगा उसी दिन मेरा आपका वियोग होगा।

शान्तनु—(स्वगत) क्या कहूं ? प्रतिज्ञा कर लूं ? किन्तु, इसके किसी कार्य में बाधा न डाल सकूंगा। भला, यह ऐसा कौन काम करेगी ? कोई ऐसा काम तो नहीं, जिस से मुझे कलंक लगे। नहीं, नहीं, जब यह मेरी अर्द्धाङ्गिनी हो जायगी तो ऐसा कोई काम ही न करेगी जो मेरे प्रतिकूल हो (प्रकट) प्रियतमे, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं तुम्हारे किसी कार्य में बाधा न दूँगा और यदि कभी ऐसा करूं तो तुमको मेरा साथ छोड़ देने का अधिकार रहेगा। अब तो तुम्हारी इच्छा पूर्ण हुई। कहो, अब क्या है सोच-विचार ?

गङ्गा—कुछ नहीं। दासी तन-मन से सेवा करने को है तैयार।

(गंगा शान्तनु के गले लग जाती है—टेबला)

पहला अङ्क।

पांचवां दृश्य।

स्थान—राजमहल का एक भाग।

(दो दासियों का प्रवेश)

एक दासी—बहन शांता, यह हमारे महाराज को क्या सूझी ? ऐसी रानी लाके रक्खी जो अपने ही पुत्रों को नष्ट कर देती है !

शांता--ऊई, बहन चम्पा, यह रानी काहे को, यह तो नागिन है—नागिन।

चम्पा—सच कहती हो। मेरी तो बहिन इतनी उमर होने आई किन्तु मैंने ऐसी स्त्री नहीं देखी।

शांता—और बहन, बड़ा आश्चर्य तो यह है कि महाराज उस के प्रेम में इतने डूबे हुए हैं कि कुछ कहते ही सुनते नहीं!

चम्पा—हां बहन, आश्चर्य की तो बात ही है। सात पुत्र नष्ट कर दिये जांय और वह कान तक न हिलाएँ।

शांता—बहन, सच तो यह है कि दोनों अपने ढंग के निराले हैं।

चम्पा—ऊई, भाड़ में पड़े ऐसा निरालापन! यह तो निरा क़साईपन है!

शांता—किन्तु, क्या तू समझती है कि रानी के इस कार्य से महाराज को कोई शोक नहीं होता? नहीं, ऐसी बात नहीं, उन्हें शोक अवश्य होता है।

चम्पा—बहन, तू भी कैसी बातें करती है। शोक होता तो उसे ऐसा करने ही क्यों देते; कुछ रोक टोक न करते?

शांता—अरी बावली, रोक टोक करें कैसे, वह तो रानी से कुछ डरते से हैं!

चम्पा—डरने की क्या बात है?

शांता—यह तो मुझे नहीं मालूम।

चम्पा—हां, यह तो बता, कहीं यह कोई राक्षसी तो नहीं है, जो सुन्दर रूप बना के महाराज की रानी बन बैठी है।

शांता—यह तो राम जाने।

चम्पा—बहन, मुझे तो उस के पास जाते बड़ा डर लगता है।

शांता—डरने की क्या बात है? हम से तो वह बड़ा अच्छा व्यवहार करती हैं—हमारे लिए तो वह साक्षात् देवी हैं।

चम्पा—अब आज ही कल में आठवीं सन्तान होने को है; देखो, उस के साथ क्या व्यवहार किया जाय।

शांता—अरी, जब यही रंग ढंग है तो उसे भी नदी में बहायेगी। (कुछ आहट सुन कर) बहन, चलो चलें, कोई आ रहा है।

(दोनों का प्रस्थान)

(राजा शान्तनु शोक में भरे हुए आते हैं)

गाना ।

कैसी करूं अब कहां मैं जाऊं।
बिथा जिया की किस को सुनाऊं॥
सात लाल मेरे नष्ट हुए हैं।
उन की याद मैं कैसे भुलाऊं॥
चैन न आवत उन बिन निश-दिन।
कैसे हृदय को अब समझाऊं॥
तेरी ही अब आश है ईश्वर।
तुझे छोड़ कर किस को ध्याऊं॥

शान्तनु—(स्वगत) किसी ने सच कहा है—'बिना बिचारे जो करे सो पाछे पछताय'। बिना सोचे-विचारे वचन दे देने का यह परिणाम हुआ कि मेरे सात पुत्रों का काम तमाम हुआ। न जाने यह कैसी स्त्री है कि पुत्र उत्पन्न होते ही गंगा की धार में फेंक देती है। इसी प्रकार इस ने मेरे सात पुत्र-रत्न नाश किये—मेरे हृदय में सात घाव डाल दिये। ईश्वर, मैंने बहुत बुरा किया

जो बिना सोचे-विचारे वचन दे दिया। अब मैं अपनी प्रतिज्ञानुसार इसे रोक भी नहीं सकता। ख़ैर, जो हुआ सो हुआ; किन्तु, अब फिर उस के पुत्र उत्पन्न होने वाला है। और, इस सन्तान के भविष्य ने मुझे बड़ी चिन्ता में डाला है। इस के साथ भी वही व्यवहार किया जायगा; हत्याकाण्ड का दृश्य फिर आंखों के सामने आयगा। क्या करूं—इसे कैसे बचाऊं? यदि मैं इसे रोकूंगा तो यह मुझे छोड़ कर चली जायगी। (सोचता है) नहीं, नहीं, अब मैं इसे सहन नहीं कर सकता। यदि जाय तो चली जाय। मैं इस बालक की रक्षा अवश्य करूंगा। इस का बाल तक बांका न होने दूंगा।

हाथ से इस पुत्र को जाने न दूँगा मैं कभी।
इस के ऊपर आँच तक आने न दूँगा मैं कभी॥

(एक दासी का प्रवेश)

दासी—राजन्, महारानी ने अभी एक पुत्र-रत्न प्रसव किया है। शीघ्र चलिए; कहीं ऐसा न हो कि इस बालक की भी हत्या हो जाय।

शान्तनु—(उत्तेजित होकर) कभी नहीं, कभी नहीं, यह बालक उस के पैशाचिक स्वभाव की भेंट नहीं चढ़ाया जा सकता; हत्या करने के लिए अब उस का साहस नहीं बढ़ाया जा सकता।

(प्रस्थान)

पहला अंक ।

छठा दृश्य ।

स्थान—गङ्गा नदी के तट पर राजमहल ।

(गंगा पुत्र लिए पलंग पर लेटी है)

[सखियां गाती हैं]

गान (कोरस)

धन धन है दिन आज, पूरन हुए काज, क्या बहार छाई ।
रानी बेटा जायो, सब को चित हरषायो, नाचें गावें,
आनंद मनावें दुःख मिटावें ।—धन धन है दिन० ॥
आओ आओ प्यारी, सखियां सारी, महल सजावें, लावें,
फूलों के गजरे, गूंध लावें, मोती की बंधनवार बनावें ।
धन, धन है दिन आज ॥

गङ्गा—(उठ कर) बस दीवानियो, बक बक समाप्त करो । जाओ अपना अपना रास्ता लो ।

(उठकर बालक को जल में फेंकना चाहती है)

एक दासी—महारानी इस बालक पर दया कीजिए, इसे जल में न फेंकिये ।

गंगा—चुप रहो । तुम्हें मेरे कार्य में बाधा देने का क्या अधिकार है ? मैं इस बालक को जीवित छोड़ दूँ, यह नहीं हो सकता ।

(राजा शान्तनु का दौड़ते हुए आना)

शान्तनु—और मैं इस असहाय बालक को तुम्हारे हाथों में छोड़ दूं, यह नहीं हो सकता।

गङ्गा—कौन ? महाराज ! क्या अपनी प्रतिज्ञा भूल गये आज ?

शान्तनु—(स्तम्भित होकर) प्रतिज्ञा ! प्रतिज्ञा तो......याद है।

गङ्गा—फिर यह कैसा वादविवाद है ?

शान्तनु—महारानी, तुमने मेरे सात पुत्र नष्ट कर दिये, किन्तु मैंने उफ़ तक न की। यदि प्रतिज्ञा-बद्ध न होता तो यह कैसे सम्भव था।

गङ्गा—किन्तु, आज ?

शान्तनु—आज......

गाना

आज कुछ दशा और है मन की।

लखी न जाती मुरझाती यों कलिका नंदन-वन की॥ आज०॥
यह नव-जात चांद का टुकड़ा इसको छवि शिशुपन की।
देख देख मोहित मन होता प्रण क्या, याद न तन की॥ आज०॥
हाय, लाल आंखों का तारा उस पर चोटें घन की।
मम कुल-दीप बुझाने को तव कुमति पवन है सनकी॥ आज०॥

गंगा—किन्तु मैं इसे जीवित नहीं छोड़ सकती—अपना नियम नहीं तोड़ सकती।

शान्तनु—महारानी, दया करो; क्षमा करो। देखो, मेरे हृदय की ओर देखो। इस में सात आघात लग चुके हैं अब इस में आठवां आघात सहने की शक्ति नहीं। तोड़ दो; अपना नियम तोड़ दो। ईश्वर के लिए

इस बालक को छोड़ दो। हत्या ! हत्या ! किस की हत्या ? बालक की ! तुम्हारे इस कार्य को देख कर पृथ्वी थर्रा रही है; आकाश काँप रहा है; समस्त लोकों से त्राहि त्राहि की आवाज़ आरही है। देखो, नदी भी अपनी लहरों द्वारा अपने हृदय की व्याकुलता जता रही है। छोड़ो महारानी, हठ छोड़ो; इस बच्चे की हत्या से मुख मोड़ो।

गङ्गा——बस, बहुत हुआ; आपका व्याख्यान खूब सुना; अब अपनी राह लीजिए; मेरे काम में बाधा न दीजिए।

शान्तनु—ठहरो। स्वेच्छाचारिणी, ठहरो। देखो, इधर देखो। (गंगा के सामने घुटने टेक कर) भारत-सम्राट् तुम से इस बच्चे की भिक्षा मांगता है। भिक्षुक को अपने द्वार से विमुख लौटाना किसी ने भी अच्छा नहीं माना।

गङ्गा——भिक्षा देना मेरा स्वभाव नहीं।

शान्तनु—न सही, किन्तु मेरी प्रार्थनाओं पर तो ध्यान दो।

गङ्गा—कदापि नहीं।

शान्तनु—बालक की ओर देखो।

गङ्गा——इच्छा नहीं।

शान्तनु—दया करो।

गङ्गा—नियम नहीं।

शान्तनु—क्षमा करो।

गंगा—आवश्यकता नहीं।

शान्तनु—विचार करो।

गंगा—समय नहीं।

शान्तनु—(स्वगत) छोड़ा, मैंने इसका मोह छोड़ा; इसके प्रेम-जाल को तोड़ा। काम-वासना को तिलाञ्जलि दी। ऐसे होनहार बालक को स्त्री-मोह की भेंट चढ़ा देना—कामलोलुपता का सब से नीच नमूना है। (प्रकट) मन्दबुद्धि भामिनी, मुझे इस बालक का वियोग किसी तरह स्वीकार नहीं। (क्रोधपूर्वक) इसे छोड़ दो मैं इसका पिता हूं। मेरे सामने तुम्हारा इस पर कोई अधिकार नहीं।

गंगा—ऐं! मेरा कोई अधिकार नहीं?

शान्तनु—हाँ, तुम्हारा कोई अधिकार नहीं।

गंगा—किन्तु, क्या आपको आपकी प्रतिज्ञा याद दिलाने का भी अधिकार नहीं?

शान्तनु—मैं अपनी प्रतिज्ञा तोड़ता हूं।

गङ्गा—(स्वगत) मेरा काम पूरा हो गया। वशिष्ठ मुनि के शाप के अनुसार इसे अभी मृत्युलोक में बहुत दिनों तक रहना है; इसको नष्ट करना मेरी शक्ति के बाहर था। इतना वादविवाद इसलिए किया कि राजा की प्रतिज्ञा टूट जाय, इनसे मेरा पिंड छूट जाय। (प्रकट) राजन्, मेरे शब्द कान देकर सुनिए! मैं जाह्नु ऋषि की कन्या, गङ्गा हूं। वशिष्ठ मुनि ने अष्ट वसुओं को मृत्यु-लोक में जन्म लेने का शाप दिया था। अष्ट वसुओं ने मुझ से मृत्युलोक में माता बनने की प्रार्थना की और कहा कि हम लोगों को जन्म लेते ही नष्ट कर देना, जिस से हमें अधिक कष्ट

न मिले। मैंने वैसा ही किया। सात वसुओं को जन्म लेते ही नष्ट कर दिया। आपका यह आठवां पुत्र द्योवसु है। इसे अधिक काल तक मृत्युलोक में रहने का शाप है, इस लिए मैं इसे आपके लिए छोड़ंती हूं। यह जीवित रहकर आपके वंश का गौरव बढ़ायेगा। मैं अब जाती हूं और इस बालक को भी लिये जाती हूं। इसका लालन-पालन मैं स्वयम् करूंगी, जब यह कुछ बड़ा हो जायगा तब आपको दे जाऊंगी। अच्छा, विदा।

शान्तनु—ठहरो; गङ्गे, ठहरो।

(गङ्गा बालक को लेकर अन्तर्ध्यान हो जाती है। सब देखते रह जाते हैं—टेबला)

——:o:——

पहला अङ्क ।

सातवां दृश्य ।

स्थान—परिडत सीताराम का मकान।

(सीताराम का प्रवेश)

सीताराम—कलियुग, घोर कलियुग। जिधर देखो पाप। जिस ओर देखो पातक। जुआ, चोरी, डकैती, छल, कपट, बेईमानी, व्यभिचार विश्वास-घात, बेहयाई इत्यादि, इत्यादि, जिधर देखो इन्हीं का राज, जिधर देखो इन्हीं का साज। पापी आ-नन्द करते हैं और हमारे से पुरायात्मा भूकों मरते हैं। न जाने ईश्वर कहाँ सोता है। इतना

पाप होता है फिर भी ख़बर नहीं लेता। मालूम होता है कि भगवान भी सठिया गया जो सारा काम ही उलट-पुलट कर दिया। मेरा बस चलता तो पचपन साला के नियम-अनुसार ईश्वर की पेंशन कर देता और सुधारक-दल के किसी आदमी को ईश्वर की जगह देता। किन्तु सच है, कि भगवान गञ्जे को पँजे नहीं देता। हा, दुख से छाती फटी जाती है। एक वह समय था कि संसार ब्राह्मणों का गुरू के समान आदर करता था और एक यह समय है कि, कोई ब्राह्मण को टके को भी नहीं पूछता, हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, इससे बढ़कर और दुख क्या हो सकता है? यदि आज सतयुग होता तो संसार हमारे ऐसे महात्माओं के पैर धो धो कर पीता। सर्व गुण-सम्पन्न। चारों वेद कंठ। ज्योतिष उंगलियों पर। तर्क-शास्त्र ज़बान पर। न्याय शास्त्र (डंडा दिखाकर) इस डंडे में। और, संसार भर की रही-सही विद्यायें नाखूनों में। सरस्वती के सच्चे सपूत, भगवान के सच्चे भक्त, शंकर महादेव के यार, किन्तु फिर भी एक एक पैसे को लाचार। हात तेरी दुनियाँ की; मेरा बस चले तो इसे काले-पानी भिजवा दूं। हरे कृष्ण! हरे कृष्ण!

(सीताराम की स्त्री चञ्चला का प्रवेश)

चञ्चला—तुम यहां खड़े क्या कर रहे हो, कुछ खाने-पीने की भी चिन्ता है?

ीताराम—अरी पगली, संतोषी जीवों को खाना-पीना क्या ? ग़मखाना और गुस्सा पीना । चलो छुट्टी हुई ।

ञ्चला—संतोष से भी भला कहीं पेट भरा है ?

ीताराम—अरी, संतोष से पेट न भरता तो यह सोलहवीं शताब्दी के विद्वान संतोष, संतोष क्यों चिल्लाते ?

ञ्चला—परन्तु, तुम तो सोलहवीं शताब्दी के नहीं हो । तुम्हें संतोष से क्या मतलब ?

ीताराम—अरे, हम न सही, हमारे बाप-दादा तो सोलहवीं शताब्दी के थे, आख़िर सन्तान तो उन्हीं की हूं । जानती नहीं कि पुरखों के विरुद्ध काम करने से मनुष्य नर्क-गामी होता है ? हरे कृष्ण ! हरे कृष्ण ! मेरा बस चले तो काले-पानी भिजवा दूं ।

ञ्चला—हा भगवान, एक वे लोग हैं जो अच्छे अच्छे कपड़े पहनते हैं, अच्छे अच्छे खाने खाते, मोटर गाड़ियों में चढ़े फिरते हैं और एक हम हैं, पेट भर अन्न भी नहीं मिलता ।

ीताराम—अरे, यह सब चार दिन की चाँदनी है। अब मालूम पड़ेगा । (मूंछों पर ताव देकर) यह हमारे ही आशीर्वाद का फल है कि कपड़ा इतना महँगा हो गया, मोटर का तेल आना बन्द हो गया, पौने सात सेर के गेहूं बिकने लगे । अब मालूम होगा सब को ।

वञ्चला—तो इससे हमारा क्या लाभ हुआ ?

सीताराम—अरी, लाभ क्यों नहीं हुआ, थोड़े दिन में सब हमारे ही ऐसे हो जायेंगे, यह क्या कुछ कम लाभ की बात है?

चञ्चला—इन बातों में क्या धरा है, कहीं नौकरी-चाकरी करो, कोई व्यापार करो और बाल-बच्चों का पेट भरो।

सीताराम—एं! ब्राह्मण होके नौकरी करूं! हरे कृष्ण! हरे कृष्ण! बस चले तो काले-पानी भिजवा दूं। नौकरी करना नीच काम, व्यापार करना बनियों का काम; हमारा काम तो केवल राम का नाम लेना और डंड पेलना।

चञ्चला—और भूँको मरना-यह भी तो एक काम ही है।

सीताराम—भूँको मरने की न कहो, भूँको तो आजकल बड़े बड़े पढ़े-लिखे मरते हैं। यह तो समय का प्रभाव है। आजकल तो यह एक बीमारी चल गई। जहां प्लेग, हैज़ा, बीमारी है वहां भूँको मरना भी एक बीमारी है।

चञ्चला—मेरी समझ में तो जो उद्योग नहीं करते वही भूँको मरते हैं।

सीताराम—अरी पगली, देखती नहीं, किसान कितने उद्योगी होते हैं। रात-दिन खून-पानी एक करके अन्न बोते हैं। किन्तु वे भी तो भूँकों मरते हैं। मेरा बस चले तो काले-पानी भिजवा दूं। कह दिया कि भूकों मरना बीमारी है-किन्तु, मानती ही नहीं।

चंचला—तो तुम कुछ उद्योग न करोगे?

ीताराम--(दोनों कानों पर हाथ धर कर) हरे कृष्ण ! हरे कृष्ण !

जो भाग्य में लिखा है वह पहुंचेगा आप से।
फैलाइये न हाथ न पल्ला पसारिये ॥

ञ्चला--अरे, मैं तुम से कुछ भीक मांगने को थोड़ा ही कहती हूं । हाथ फैलाना और पल्ला पसारना तो भीक मांगने को कहते हैं ।

ीताराम--(स्वगत) कितनी बातूनी औरत है । मैं तो इस से हार गया । (प्रकट) अरी, मतलब तो पहले चरण से है; दूसरा चरण तो केवल तुक मिलाने के लिए है । कहने का मतलब यह है कि जो भाग्य का लिखा वह आप मिलेगा फिर हाथ पैर हिला कर शरीर को कष्ट क्यों दें। बस चले तो काले-पानी भिजवा दूं । हरे कृष्ण ! हरे कृष्ण !

ञ्चला--(स्वगत) हाः भगवान्, मैं अच्छे के पाली पड़ी। घर में पैसा नहीं, खाना नहीं, कपड़ा नहीं और, यह अपनी शान ही लिये बैठे है; टस से मस नहीं होते।

(बाहर से आवाज़ आती है)

आवाज़--पण्डित सीताराम । अजी ! पंडित जी । ओ, पण्डित सीताराम !!

चञ्चला--देखो बाहर कोई पुकारता है।

सीताराम--बस चले तो काले-पानी भिजवा दूं । अरे कौन पुकारता है ? न लेना एक न देना दो, यों ही झक मारता है ।

चञ्चला--हे भगवान, मैं तो इन से दुखी हो गई। अरे, देख तो लो कौन है? कदाचित् किसी काम को आया हो; शादी-ब्याह कराने के लिए आया हो।

सीताराम--अरी, मेरा तो तेरे एक के मारे ही नाक में दम है, अब क्या मेरे प्राण फालतू हैं जो दूसरा........

चञ्चला--हाय, मैं क्या कहूं? अरे, मैं तुम्हारे ब्याह की बात नहीं कहती; मेरा मतलब है कि कोई अपने लड़के--लड़की के विवाह का कर्मकाण्ड कराने के लिए तुम्हें बुलाने आया हो।

सीताराम--(जल्दी से) ओ हो हो! यह बात है। क्षमा करना, मैं समझा नहीं था। (चिल्लाकर) अरे भई, लौट न जाना, आता हूं; और, लौट गये हो तो लौट आओ। (चंचला से) देखा योग का चमत्कार; अन्त को फँसा न शिकार। हूं................

बस चले तो काले-पानी भिजवा दूं।

(प्रस्थान)

चञ्चला--हा ईश्वर, यह अपने को बड़ा पढ़ा-लिखा सर्वगुण निधान समझते हैं, किन्तु इनमें बुद्धि का तो नाम तक नहीं, जो काम करेंगे उलटा, जो बात कहेंगे उलटी।

(दूसरी ओर जाती है)

(सीताराम एक बाबू साहब के साथ आते हैं।)

सीताराम--हां, तो कब की लगन है (उँगलियों पर गिनता है) मीन, मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या। मेरी समझ में तो इस शनिश्चर की लगन ठीक है। विवाह में कुछ बहुत खर्च..........।

बाबू—अजी पंडित जी, यह आप क्या कहते हैं ? मैं इस……

सीताराम—हां, हां, मैं जानता हूं आप को इस बात की कोई चिंता नहीं । तब भी मैं आपको ख़र्च का ब्योरा बताये देता हूं । कुल ३६) रुपये नवग्रह के पूजन के लिए, और कोई २०-२५ रु० गणेश-पूजन के लिए और कोई ३०-४० रुपये फुटकर पूजन के लिए—कुल सौ रुपैया का ख़र्च है ।

बाबू—मैं नहीं समझता कि यह आप क्या बक रहे हैं ? मैं तो-

सीताराम—तो क्या आप समझते हैं कि ख़र्च अधिक बताया ? नहीं, कम ख़र्च में भी काम चल सकता है । जितना गुड़ डालियेगा उतना ही मीठा होगा । कम ख़र्च का विचार हो तो ५०) में भी काम चला सकता हूँ । मैं ऐसा वैसा पण्डित नहीं हूं ; जैसे कहिये वैसे ही करूं । हाँ, तो लगे हाथों मेरी दक्षिणा भी तय कर दीजिए । बड़े आदमियों से तो मैं सौ रुपये से कम नहीं लेता, किन्तु आप साधारण आदमी हैं—पञ्चानवे ही दे दीजिए; मैं इतने ही में प्रसन्न हो जाऊँगा । आप जानते हैं, मैं बड़ा सन्तोषी पण्डित हूं ।

बाबू—अजी पण्डित जी, मैं विवाह-शादी के लिए नहीं आया-मैं तो कुछ और ही काम से आया हूं ।

सीताराम—(स्वगत) हत तेरे की । मेरा इतना समय नष्ट किया (प्रकट) क्यों महोदय, जब आप को दूसरा काम था तो पहले ही क्यों न कह दिया । वाह ! मुझे भी कोई उल्लू समझा कि इतनी

देर हँसी में टालते रहे। बस चले तो काले पानी भिजवा दूं।

बाबू—अजी महाशय, आपने मुझे बोलने तो दिया ही नहीं, अपनी ही कहते रहे फिर भला मैं कैसे कहता ?

सीताराम—बोलने क्यों नहीं दिया ? क्या मैं तुम्हारा मुँह दाबे था ?

बाबू—अजी आप तो अपनी ही ओटते रहे। मेरी तो सुनी ही नहीं।

सीताराम—अच्छा कहिये, क्या काम है ?

बाबू—हमारे स्कूल में संस्कृत पढ़ाने के लिए एक पण्डित की आवश्यकता है; यदि आप स्वीकार करें, तो वह जगह आपको दी जा सकती है।

सीताराम—कितनी देर पढ़ाना पड़ेगा ?

बाबू—साढ़े पांच घंटे-१० बजे से साढ़े तीन बजे तक।

सीताराम—वाह ! मुझे भी कोई कुली समझा है कि दस बजे जाऊँ और साढ़े तीन बजे छुट्टी पाऊं। नहीं महाशय, मैं ऐसा काम नहीं करूंगा।

बाबू—पण्डित जी, वेतन ४०) रुपये मासिक मिलेगा।

सीताराम—वेतन कैसा ? क्या मैं किसी के बाप का नौकर हूं जो वेतन मिलेगा।

बाबू—नहीं, नहीं, मैं भूल गया, वेतन नहीं दक्षिणा।

सीताराम—अच्छा दक्षिणा ! दक्षिणा ४०) रु० मासिक ! अच्छा अब आप मेरे घर पर दौड़े आये हैं तो

मैं·····स्वीकार किये लेता हूं। किन्तु, लड़कों को मेरे घर ही पर भेज दिया कीजियेगा।

बाबू—लड़के आप के घर पर तो नहीं आ सकते, आपको वहीं जाना पड़ेगा।

सीताराम—(कुछ सोच कर) अच्छा महोदय, ऐसा ही सही। (ठंडी सांस भर के) इस कलियुग में जो न हो सो थोड़ा। बस चले तो काले-पानी भिजवा दूं।

बाबू—तो कल से पधारियेगा।

सीताराम—अच्छा भाई, पधारूँगा।

बाबू—तो अब आज्ञा दीजिये।

सीताराम—चलिये। (जनता की ओर मुँह कर के) बस चले तो काले-पानी भिजवा दूँ।

(दोनों का प्रस्थान)

——:o:——

पहला अङ्क ।

आठवां दृश्य ।

स्थान-वन ।

(बालक देवव्रत हाथ में धनुष-बाण लिए तीर चलाता हुआ एक ओर से आकर दूसरी ओर चला जाता है।)

(राजा शान्तनु और मंत्री का प्रवेश)

शान्तनु—मंत्री जी, यह सुन्दर बालक किस भाग्यवान् का पुत्र है। ऐसा तेजस्वी और बलवान बालक मैंने कोई नहीं देखा।

मंत्री—महाराज, इस बालक को तो मैं भी नहीं पहचानता। निःसंदेह बड़ा होनहार बालक है। वह पुरुष धन्य है जिसके वीर्य से यह उत्पन्न हुआ और वह स्त्री अत्यन्त सौभाग्य-शालिनी है जिसने इसका गर्भ धारण किया।

शान्तनु—पर वह चला किधर गया? उफ़, कितनी फुरती के साथ आंखों के सामने से ओझल हो गया।

मंत्री—महाराज मुझे तो ऐसा मालूम हुआ कि कोई मृग चौकड़ियां भरता हुआ निकल गया।

शान्तनु—इसका पता लगाना चाहिए।

मंत्री—कहां पता लगेगा?

शान्तनु—इसी ओर तो गया है।

मंत्री—हां, थोड़ी दूर तक तो इधर ही जाता दिखाई दिया था परन्तु फिर तो एकदम अदृश्य हो गया।

शान्तनु—हा, आज इस बालक को देख कर मेरे हृदय में पुत्र शोक फिर हरा हो गया!

घाव लगे थे जितने हृदय में थे वह प्रायः सूख चुके।
देख के इस बालक को वह सब फिर से हो गये हरे-भरे॥
यदि संसार में होता मेरा वह अन्तिम बालक ही आज।
तो इस बालक से होता क्या कुछ कम उसका सुन्दर साज॥
बाण चलाना इसका मेरे जी को इतना भाता था।
गोद उठा कर गले लगा लूँ यही हृदय में आता था॥

मंत्री—यह तो सच है; किन्तु, राजन्!

भूतकाल की चिन्ता करना नहीं बुद्धिमानों का काम।
लाभ कुछ नहीं, हानि सर्वथा, शोक में रहना आठोयाम॥

स्वप्न-रंग से उस घटना की पूरी पूरी तुलना थी।
कुछ अस्तित्व नहीं था उसका सब माया की छलना थी ॥

(देवव्रत को लिए हुए गंगा का प्रवेश)

गंगा—स्वप्न रंग से उस घटना की तुलना करना है अन्याय।
जो आंखों से देखी हो वह कैसे मिथ्या समझी जाय ?

(राजा शान्तनु और मंत्री चकित होते हैं)

राजा शान्तनु—कौन ? गंगा ?

गंगा—हां महाराज, गङ्गा ।

शान्तनु—यहां कैसे आई ?

गंगा—आपके पुत्र को लाई । (देव व्रत की ओर इशारा करती है)

शान्तनु—कौन ? मेरा पुत्र, मेरा प्यारा पुत्र ?

गंगा—हां, आपका प्यारा पुत्र ।

(राजा शान्तनु पुत्र को हृदय से लगा लेते हैं)

गंगा—महाराज, अब आज से यह आपके ही पास रहेगा। मैंने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया । इसने परशुराम इत्यादि अनेक ऋषियों से शिक्षा पाई है । यह अस्त्र-शस्त्र चलाने में खूब निपुण है। अब आज से इसकी रक्षा करने का भार आप पर है । अच्छा, अब मैं आप से बिदा होती हूं ।

देवव्रत—माता, तुम कहां जाती हो ? हमारे साथ पिता जी के यहां चलो।

गंगा—पुत्र, मृत्युलोक में मेरा रहना असम्भव है इस कारण मैं तुम्हारे साथ नहीं चल सकती ।

देवव्रत—तो क्या अब तुम हमारे पास कभी नहीं आओगी ।

गंगा—नहीं, वत्स, ऐसी बात नहीं, मैं कभी कभी तुम्हें आकर देख जाया करूंगी।

शान्तनु—गंगे, अच्छा होता यदि तुम मेरे साथ चलती।

गङ्गा—महाराज, आप बुद्धिमान होकर ऐसी बात कहते हैं, सब जानबूझ करभी अनजान बनते हैं। अच्छा, बिदा।

(गङ्गा का प्रस्थान)

शान्तनु—मंत्री जी, चलिये हम भी चलें।

मंत्री—चलिये राजन्।

(शान्तनु, मंत्री और देवव्रत का दूसरी ओर प्रस्थान)

——:०:——

पहला अङ्क।

नवां दृश्य।

यमुना नदी का तट

(सत्यवती और दो सखियों का प्रवेश)

[सब जल लाने के लिए पात्र लिये हैं।]

गान कोरस

तीनों—आओ, आओ री सखियां जल भरन को जाइयां,
एक—कैसी यमुना गम्भीर,
दूसरी—मन्द मन्द बहत नीर,
सत्यवती—चलत सुखद शुभ समीर,
सब—आनन्द रह्यो छाइयां—आओ आओ री०
एक—कोयल करती पुकार,
दूसरी—पपिहा बोले बार बार,

सत्यवती—डार डार पे निखार,
सब—कैसो सुख-दाइयां
आओ सखियां, हिलमिलियां, रंगरलियां मचाइयां—आओ०

एक सखी—बहन, प्रातःकाल का समय भी कितना सुहावना होता है।

दूसरी—सखी, मेरे लिए तो यह समय बड़ा मनभावना होता है।

सत्यवती—चल झूठी, चपला की हां में हां मिलाती है। अकारण ही बातें बनाती है।

दूसरी—(चपला) लो बहन, भला इस में हां में हां मिलाने की क्या बात थी?

सत्यवती—यदि तुझे यह समय सुहावना लगता है तो रोज़ इसी समय क्यों नहीं आती, आज भी जब हम दोनों बुलाते बुलाते थक गई तब तुम घर से निकलीं।

दूसरी—हां बहन यह तो ठीक है कि मैं रोज़ नहीं आती, किन्तु यह मेरा अपराध नहीं।

चपला—तो फिर किस का है?

दूसरी—किस का बताऊं?

चपला—अच्छा मैं समझ गई!

सत्यवती—क्या समझ गई?

चपला—इस का पति इसे प्रातःकाल उठ कर नहीं आने देता। (मुसकरा कर) क्यों री रम्भा, यही बात है ना?

रम्भा—बहन तू बड़ी निर्लज्ज है।

चपला—ओहो बड़ी सलज्जा! पति के नाम....................

सत्यवती—(चपला को रोकती है) बस बस, यह बातें समाप्त करो, मुझे यह बातें नहीं भातीं।

चपला—ठीक है ! तुम्हें क्यों भाने लगीं । विवाह नहीं हुआ इसी लिए यह भोलापन दिखाती हो, किन्तु ज़रा हृदय से तो पूछो ?

रम्भा—हां, ज़रा अपने हृदय से तो पूछो ।

सत्यवती—क्यों तुम न मानोगी ?

चपला—प्यारी-तुम्हारे पिता तुम्हारा विवाह किसी राजकुमार के साथ करने का विचार कर रहे हैं ।

रम्भा—तो यह कहो ! रानी बनने की बातचीत है ! !

सत्यवती—देखो, तुम मुझे अधिक छेड़ोगी तो मैं चली जाऊंगी, और फिर कभी तुम्हारे साथ न आऊँगी ।

चपला—ओ हो इतनी लज्जा !

गाना

चपला—कैसी भोली भाली बातें सारी प्यारी हैं तुम्हारी
रम्भा—ऐसी शरमीली गर्वीली नहीं देखी नारी—कैसी०
सत्यवती—चलो हटो मतवारी-दूंगी मैं अब गारी, कैसी०
सत्यवती—प्रेम की घतियां, रस भरी बतियां, मोहे सखी न सुनाओ—हटो अब न सताओ-शरमाओ जाओ,
चपला—ऐसी लज्जा हमें न दिखाओ,
रम्भा—यह घुड़की झिड़की और को बताओ,
दोनों—प्यारी पे अपनी, जांय वारी बलिहारी—कैसी भोली०

सत्यवती—अब जल भरने भी चलोगी या नहीं, देखो सूर्य उदय हो आया ।

चपला—हां, हां, चलो ।

(तीनों जल भरती हैं)

(राजा शान्तनु और मंत्री का प्रवेश)

मंत्री—राजन्, अब तो राजभवन की ओर लौटना चाहिए।
शान्तनु—हां, मेरा भी यही विचार है। किन्तु मंत्री जी यह सुगंध किस ओर से आ रही है।
मंत्री—इधर कोई बाग़ होगा।
शान्तनु—किन्तु यह तो नदी की ओर से आ रही है।
मंत्री—(उँगली से बता कर) क्या उस ओर से जिस ओर वह तीन युवतियां जल भर रही हैं।
शान्तनु—हां, उसी ओर से।

(सत्यवती, चपला तथा रम्भा जल लेकर लौटती हैं और शान्तनु तथा मंत्री के पास से होकर चली जाती हैं)

शान्तनु—मन्त्री जी, मुझे तो मालूम होता है कि यह सुगन्ध इस युवती के शरीर से आ रही है जो तीनों में अधिक सुंदर है और जिसकी चाल गज की चाल को भी लजा रही है।
मंत्री—राजन्, मुझे भी कुछ ऐसा ही मालूम होता है।
शान्तनु—(जिस ओर सत्यवती इत्यादि गई हैं उस ओर इशारा करके) इस ओर किन लोगों के रहने का स्थान है?
मंत्री—इस ओर तो धीवरों के राजा दासराज का मकान है।
शान्तनु—एँ, धीवरों के मकान, तुम्हारा किधर है ध्यान?
मंत्री—नहीं राजन्, मुझे भली भांति मालूम है। इधर धीवर ही रहते हैं।
शान्तनु—एँ! कीच में कमल, गुदड़ी में लाल! कहां धीवर और कहां यह अप्सरा रूपिणी, कन्या। कैसा विचित्र संयोग है। (मंत्री से) मंत्री जी यह रत्न तो राज-महलों के योग्य है।

मंत्री—किन्तु महाराज धीवर की कन्या को कौन रानी बनाय, अपनी मान-मर्यादा घटाय ।

शान्तनु—यह तुम्हारा भ्रमपूर्ण विचार है, क्षत्रियों को धीवर की कन्या लेने का पूरा अधिकार है । मेरा मन इस सुन्दरी ने हर लिया, मैंने इसे रानी बनाने का संकल्प कर लिया । जाओ, पता लगाओ और हो सके तो इसके पिता को बुला लाओ ।

मंत्री—जो आज्ञा, किन्तु आप इधर छाया में आकर ठहरिये मैं जाता हूं और पता लगा कर शीघ्र आता हूं ।

शान्तनु—अच्छा चलो मैं यहां ठहरता हूं ।

(दोनों का प्रस्थान)

पहला अंक ।

दूसरा दृश्य ।

स्थान—राज महल का एक भाग ।

(युवा राजकुमार देवव्रत और मंत्री का प्रवेश)

देवव्रत—मंत्री जी, पिता का तो बुरा हाल है । आंखों में वह ज्योति नहीं, मुख पर वह कांति नहीं, शरीर में वह चपलता नहीं, बातचीत में वह मधुरता नहीं । रात-दिन अकेले पड़े रहते हैं राज का कार्य भी नहीं देखते । इसका क्या कारण है ?

मंत्री—राजकुमार, क्या आपने महाराज से इस विषय पर बातचीत नहीं की ?

देवव्रत—मैंने बातचीत की थी किन्तु उन्होंने कोई संतोष-जनक उत्तर नहीं दिया ।

मंत्री—आख़िर क्या कहा ?

देवव्रत—कुछ नहीं, इधर उधर की बातें करके टाल दिया। अब उनके हृदय की बात आप ही के द्वारा मालूम हो सकती है।

मंत्री—मैं क्या बताऊं ?

देवव्रत—क्यों, क्या बताने में कोई हानि है ?

मंत्री—हानि तो कोई नहीं, किन्तु···।

देवव्रत—किन्तु, परन्तु क्या ? पिता की यह दशा और आप न उनके दुख दूर करने का प्रयत्न करते हैं, न कुछ बताते हैं।

मंत्री—महाराज का दुख दूर करना मेरी शक्ति के बाहर है।

देवव्रत—तो मुझे बताओ, मैं पिता का दुख दूर करूंगा। मैं प्राण रहते कभी पिता का दुख सहन नहीं कर सकता, बताओ मंत्रिराज बताओ, मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं पिता के लिए सब कुछ करूंगा, जैसे बनेगा उनका कष्ट हरूंगा।

मिले पिता को सुख जिसमें मैं वही करूंगा।
कुछ भी हो पर उनका कष्ट समस्त हरूंगा॥

बताओ मंत्री जी, पिता के दुख का कारण शीघ्र बताओ।

मंत्री—युवराज, महाराज के दुख का कारण दासराज धीवर की कन्या है।

देवव्रत—धीवर की कन्या ! क्यों उसने क्या किया ?

मंत्री—महाराज का हृदय छीन लिया।

देवव्रत—क्या, वह इतनी रूपवान है ?

मंत्री—सुन्दरता की खान है।

देवव्रत—कोई और गुण भी है ?

मंत्री—शरीर से कमल की सुगन्ध आती है।

देवव्रत—तो, उस कन्या का मिलना क्या कठिन है ?
मंत्री—बहुत कठिन है।
देवव्रत—यह कैसे ?
मंत्री—वह बदले में राज्य चाहती है।
देवव्रत—इसका क्या अर्थ ?
मंत्री—महाराज ने उसके पिता से विवाह करने का प्रस्ताव किया था वह राज़ी हो गया; किन्तु उसने जो शर्त चाही वह बड़ी कठिन थी। उसने कहा कि मेरी कन्या से जो पुत्र हो, वही राज्य का उत्तराधिकारी हो। किन्तु आपके होते हुए वह यह शर्त कैसे स्वीकार करते। अतएव उन्होंने शर्त स्वीकार नहीं की।
देवव्रत—तब फिर क्या हुआ ?
मंत्री—उसने अपनी कन्या देना अस्वीकार कर दिया।
देवव्रत—बस, केवल इतनी ही सी बात ?
मंत्री—हां इतनी ही सी बात, अब महाराज उस कन्या सत्यवती के लिए अधीर हो रहे हैं, उसके विरह में प्राण खो रहे हैं।
देवव्रत—(स्वगत) हा अदृष्ट, मेरे कारण पिता को इतना कष्ट। मैं उनके सुखमार्ग का रोड़ा हो रहा हूं, अपने कर्तव्य-क्षेत्र में पुष्प लगाने के बदले कांटे बो रहा हूं। धन्य पिता का प्रेम, पिता की सहृदयता, पिता की न्याय-प्रियता। सत्यवती के विरह में जल २ कर प्राण देना स्वीकार किया, किन्तु जिस पर उन्होंने मेरा अधिकार समझा, उसे दूसरे को नहीं दिया। उन्होंने अपना कर्तव्य तो पूरा उतारा, किन्तु देवव्रत, देवव्रत तू ने अपने कर्तव्य के विषय में क्या

विचारा ? क्या तेरा यही कर्तव्य है कि राज्य पर दृष्टि रक्खे और पिता के दुख की ओर आंख उठा कर भी न देखे। हाथ में शीतल जल होते हुए भी पिता के हृदय की प्यास न बुझावे। पिता का सुख अब केवल तेरे कर्तव्य-पालन का मुँह ताक रहा है। पिता की सफलता के मार्ग में कर्तव्य तेरी प्रतीक्षा कर रहा है। उधर पिता के हृदय में विरह की धधकती हुई आग, इधर तेरे हृदय में त्याग। तेरे त्याग का जल ही पिता की विरहाग्नि बुझा सकता है। आत्म-त्याग, आत्म-त्याग तू मनुष्य की सब से बड़ी शक्ति है। जहां मनुष्य की सारी शक्तियां व्यर्थ हो जाती हैं, वहां केवल तेरी ही शक्ति आड़े आती है। जिसके हृदय में त्याग है, संसार उसकी मुट्ठी में है।

आत्मा की शक्ति वह है त्याग जिसका नाम है।
आत्मा है उच्च उसकी त्याग जिसका काम है॥
है मनुष्य वही कि जिसको त्याग से कुछ प्यार है।
सच तो यह है, त्याग ही संसार में एक सार है॥

छोड़ो, ऐ नेत्रो राजसिंहासन देखने की आशा छोड़ो, कानों अपने प्रति महाराजा और राजन् शब्द सुनने की अभिलाषा छोड़ो—पैरो राजसिंहासन पर चढ़ने का मोह त्यागो।

त्याग करो ऐसा कि पिता का दुःख मिटा दो।
पिता के सुख पर अपने सुख की भेंट चढ़ा दो॥
पिता के दुख में ही दुख अनुभव करना सीखो।
पिता के सुख में ही सुख अनुभव करना सीखो॥

मंत्री—राजकुमार किस चिंता में हो, क्या सोचते हो ?

देवव्रत—वही पिता के कष्ट की बात । मेरे होते हुए पिता को मेरे ही कारण दुःख मिले, धिक है मुझे । मंत्रि-राज जब तक पिता के कष्टों का अंत न हो जायगा, तब तक मुझे चैन न आयगा ।

मंत्री--राजकुमार तुम वृथा तिल का ताड़ बना रहे हो। महाराज के हृदय में विरह का वेग अभी ताज़ा है इस कारण उन्हें इतना दुःख है, जब यह वेग कुछ कम हो जायगा, तो यह दुख दर्द भी खो जायगा ।

देवव्रत- नहीं मन्त्री जी, यह बात नहीं है। या तो तुम मुझे भुलाने की चेष्टा कर रहे हो या पिता की अवस्था से बिल्कुल बेख़बर हो। मेरा विश्वास है कि यदि कुछ सप्ताह भी उनका यही हाल रहा तो उनका मरण हो जायगा । किन्तु देवव्रत के रहते हुए ऐसा कभी न होने पायगा ।

मंत्री--तो क्या तुम राज्य छोड़ दोगे ?

देवव्रत--छोड़ दूंगा, अवश्य छोड़ दूंगा ।

एक राज्य क्या सहस्र राज्य की अभिलाषा उर में न धरूं।
हित हो पिता का यदि कुछ तो इस शरीर का भी त्याग करूँ ॥

मंत्री--तो फिर राजकुमार तुमने क्या तय किया है ?

देवव्रत--दासराज के पास चल कर इस उलझी हुई गांठ को सुलझाने का निश्चय किया है। जाओ मंत्री जी, दासराज के पास चलने की तय्यारी करो ।

मंत्री--जैसी इच्छा ।

(मन्त्री का प्रस्थान)

गाना।

देवव्रत—

ऐसी प्रतिज्ञा करूंगा मैं, पिता की पीर हरूंगा मैं,
काम न जब तक पूरा होगा धीर कभी न धरूंगा मैं।
हृदय में है यह ही अब ध्यान, करलूँ चलने का सामान,
दासराज के पहुंचू मकान-तन जाये, मन जाये,
धन जाये, सब जाये पिता को सत्यवती मिल जाये।
पिता को सुख हो, दूर यह दुख हो, मुझे भी होवे हर्ष महान,
ऐसी प्रतिज्ञा करूंगा मैं........।

——:o:——　　　　(प्रस्थान)

पहला अंक।

ग्यारहवां दृश्य।

स्थान दासराज धीवर का मकान

[देवव्रत और मंत्री का प्रवेश]

मंत्री--यही है, राजकुमार देवव्रत, दासराज का घर यही है।

देवव्रत--जाओ उसे यहां बुलाओ।

(मन्त्री का प्रस्थान)

देवव्रत--हृदय तू दृढ़ हो, जिह्वा तू प्रतिज्ञा के शब्द उच्चारण करने के लिये तय्यार हो। आओ देवतागण, मेरी सहायता के लिए आओ। देखो प्रतिज्ञाबद्ध होते समय कहीं मेरा हृदय न धड़क जाय, देखो कहीं जिव्हा न लड़खड़ाय: कहीं शरीर न कांपे, कलेजा न थर्राय, राज्य का लोभ अपनी सूरत न दिखाय।

(दासराज सहित मन्त्री का प्रवेश)

मंत्री—(दासराज से) दासराज, भारत सम्राट् महाराजा शान्तनु के पुत्र और राज्य के उत्तराधिकारी युवराज देवव्रत यही हैं।

दासराज—(प्रणाम करता है) धन्य, आज का दिन धन्य है, जो युवराज ने मेरा घर पवित्र किया। कहिये श्रीमान् क्या आज्ञा है?

देवव्रत—दासराज, मेरे पिता ने तुम्हारी कन्या के साथ विवाह करने की बात तुम से कही थी?

दासराज—हां, महाराज कही थी।

देवव्रत—तुम ने क्या उत्तर दिया?

दासराज—(घबड़ा कर) क्या उत्तर दिया था? मैंने तो... श्रीमान् यदि मेरे मुँह से कोई अनुचित शब्द—

देवव्रत—नहीं तुम ने अनुचित शब्द कोई नहीं कहा, मैं वह कारण जानना चाहता हूं जो तुम्हें अपनी कन्या मेरे पिता को देने से रोकते हैं।

दासराज—वह कारण तो मंत्रिराज ने आप से बताये होंगे।

देवव्रत—उन्हें फिर से कहो।

दासराज—युवराज मेरा कहना यह था कि मैं अपनी कन्या उस समय दे सकता हूं जब मेरी कन्या के गर्भ से उत्पन्न हुआ बालक राज्य का उत्तराधिकारी बने।

देवव्रत—यदि तुम्हारी यह बात मान ली जाय?

दासराज—किस प्रकार?

देवव्रत—अर्थात् मैं राज्य पर से अपना अधिकार उठा लूं।

दासराज—आप के अधिकार उठा लेने से क्या होगा, आप की सन्तान का तो उस पर अधिकार रहेगा।

देवव्रत– हां, यह ठीक है, मेरी सन्तान राज्य पर अपना अधिकार जमा सकती है ।

दासराज—हां युवराज, कुछ ऐसी ही उलझन है ।

देवव्रत—मेरी सन्तान राज्य पर अपना अधिकार न जमाय उस का केवल एक है उपाय ।

मंत्री – कौन उपाय ?

देवव्रत—कि, मैं विवाह ही न करूं, जन्म भर ब्रह्मचारी रहूं ।

मंत्री—युवराज, तुम यह कैसी बातें करते हो, ऐसा भला कहीं हो सकता है । यह बिल्कुल असम्भव है ।

देवव्रत—करने वाले के लिए सब कुछ सम्भव है ।

डट गया जिस बात पर जी, कर उसे डाला वहीं ।
कर्म-वीरों के लिए तो कुछ असम्भव ही नहीं ॥

दासराज—राजकुमार प्रण करना तो सरल है, किन्तु उस का निभाना कठिन है ।

मंत्री—निस्संदेह, प्रतिज्ञा को पूरा उतारना अत्यन्त कठिन है ।

देवव्रत—क्या कहा, प्रतिज्ञा निभाना कठिन है, मंत्रिराज क्या तुम सच्चे क्षत्रियों से परिचित नहीं, उन के हृदय को नहीं जानते? दासराज क्या तुम क्षत्रियों को नहीं पहचानते ।

मंत्री—युवराज, मैं तुम्हारे हृदय से भली भांति परिचित हूं किन्तु मेरा कहना यह है कि ऐसा प्रण करने की आवश्यकता ही क्या है ?

दासराज—निस्सन्देह आवश्यकता ही क्या है ?

देवव्रत—अपनी आवश्यकता को मैं ही भली भांति जानता हूं । सुनो दासराजः—

मैं हूं क्षत्री पुत्र मुझे मत कायर जानो,
जो मैं कहता सत्य उसे अक्षरशः मानो ।
प्राण जांय पर धर्म नहीं अपना छोड़ूंगा,
जीवन रहते नहीं प्रतिज्ञा मैं तोड़ूंगा ।
मैं जो कुछ तुम से कहूं ध्यान ज़रा उस पर धरो ।
तुम जो चाहो मैं करूं, मैं जो चाहूं तुम करो ॥
साक्षी सुरगण हुए और वह सत्य धाम है,
जिस का विमल विकाश जगत में आठ याम है ।
राजपाट से रहा न अब कुछ मुझे काम है,
रहें प्राण प्रण-संग, लालसा यह ललाम है ।
सिंहासन या छत्र पर ध्यान कभी दूंगा नहीं ।
मिलै राज त्रैलोक का तो भी मैं लूंगा नहीं ॥
ब्रह्मचर्य-आश्रम का सदा निवाह करूँगा,
ललनाओं की ओर कभी न निगाह करूँगा ।
सुनो दासपति सुनो न सुत की चाह करूँगा,
आजीवन मैं नहीं कदापि विवाह करूँगा ।
यदि न रहेगा बांस तो फिर न बजेगी बांसुरी ।
कभी सत्य के गले पर फेर नहीं सकता छुरी ॥
चन्द्र, सूर्य टल जांय और ध्रुव भी टल जाये,
हिले शेष का शीश और अचला चल जाये ।
छूट जगह से टूट फूट नभ मंडल जाये,
कमलासन से कमल, कमल से हट जल जाये ।

जमा जहां पर जमा अब पैर फिसल सकता नहीं।
क्षत्रिय देवव्रत कभी व्रत से टल सकता नहीं॥

मन्त्री—धन्य है-देवव्रत धन्य है। तुम ने आज ऐसी भीषण प्रतिज्ञा की है कि तुम्हें भीष्म कहें तो सर्वथा उचित है।

(आकाश से धन्य धन्य के शब्द और फूलों की वर्षा-टेबलो)

[ड्राप]

पहला अंक समाप्त।

——:o:——

दूसरा अङ्क ।

पहला दृश्य ।

स्थान राज भवन का एक भाग ।

(भीष्म और विधवा सत्यवती का प्रवेश)

सत्यवती—वत्स, यदि आज तुम्हारे पिता जीवित होते तो तुम्हारे छोटे भाई विचित्रवीर्य के विवाह के लिए क्या हम इतने चिन्तित होते ? (ठंडी सांस भर के) हा, विधाता तेरी इच्छा ।

भीष्म—माता, तुम इतनी अधीर क्यों होती हो । यदि पिता जीवित नहीं तो क्या विचित्रवीर्य का विवाह न होगा ? वह मेरा छोटा भाई है मैं उस के विवाह का प्रबन्ध करूंगा ।

सत्यवती—पुत्र, विचित्रवीर्य मेरे गर्भ से होने के कारण यद्यपि तुम्हारा सगा भाई नहीं है, तथापि तुम उस से उतना ही प्रेम करते हो जितना कि बड़े भाई को अपने सगे छोटे भाई से होता है । इस कारण मुझे पूरा विश्वास है कि तुम उस के विवाह की चेष्टा करोगे । पिता के पश्चात् अब तुम्हीं उस के रक्षक हो । यद्यपि तुमने प्रतिज्ञा-बद्ध होने के कारण, महाराज के पश्चात् उसी

को राजसिंहासन पर बिठाया है किन्तु समस्त राज्य पर और राजा विचित्रवीर्य पर तुम्हारी ही छाया है।

(राजा विचित्रवीर्य का प्रवेश)

भीष्म०—आइये, राजन् पधारिये।

विचित्र—(सत्यवती से) माता देखो भाई जी कैसा अनुचित व्यवहार करते हैं, बड़े होकर छोटे भाई का शिष्टाचार करते हैं।

(सत्यवती मुसकराती है)

भीष्म—नहीं भाई, यह तुम्हारी भूल है, यद्यपि तुम मेरे छोटे भाई हो किन्तु इस समय राजा हो। मैं तुम्हारा शिष्टाचार बड़े भाई की हैसियत से नहीं बल्कि प्रजा की हैसियत से करता हूं।

विचित्र०—हैं, आप और मेरी प्रजा?

भीष्म—वत्स, तुम अभी राजनीति से अनभिज्ञ हो। हम सब तुम्हारी प्रजा हैं। हम को प्रजा की हैसियत से तुम्हारा वैसा ही सन्मान करना चाहिए जैसा कि राजा का किया जाता है। घरेलू बातों में मैं तुम्हारा बड़ा भाई और तुम मेरे छोटे भाई हो, किन्तु बाहरी और राज्य-सम्बन्धी बातों में तुम राजा हो और मैं तुम्हारी प्रजा हूं।

विचित्र०—किन्तु इस समय कौनसी राज-काज की बात थी?

भीष्म—घरेलू तौर से भी मैं जब तुम से मिलूँगा उस समय पहले एक बार तुम से राजा-प्रजा का सा व्यवहार करूंगा, तत्पश्चात् वही छोटे बड़े का सा व्यवहार

रहेगा । यह नियम इस लिए कि मुझे हर समय यह याद रहे कि तुम राजा हो और जब यह याद रहेगा तो मुझ से कोई कार्य ऐसा न होगा जिस से तुम्हारी राजकीय मर्यादा को बाधा पहुंचे ।

विचित्र०--भाई जी, आपने मुझे राजा बना कर तो बिठा दिया किन्तु राजनीति का रहस्य कुछ न बताया, भला ऐसे काम कैसे चलेगा ?

भीष्म--वत्स, राजनीति बड़ा गम्भीर विषय है। यह एक दिन में नहीं बताया जा सकता, धीरे धीरे तुम्हें सब मालूम हो जायगा। राजनीति का सार प्रजा वत्सलता है, प्रजा को सुखी रखने की चेष्टा करो. प्रजा के सुखों के लिए अपने सुखों को तिलाञ्जलि देदो । जब प्रजा को तुम से सुख मिलेगा तो प्रजा तुम्हारी मीत रहेगी, हर जगह तुम्हारी ही जीत रहेगी । जिसकी प्रजा मित्र है उसका शत्रु सहस्र भुजा रखते हुए भी उसको हानि नहीं पहुँचा सकता । अपने स्वार्थ में प्रजा का स्वार्थ समझना बड़ी भूल है । नाश का यही मूल है। प्रजा के स्वार्थ में अपना स्वार्थ समझना सच्ची राजनीति है, दूर-दर्शियों की यही रीति है ।

विचित्र०--निस्संदेह भाई जी आपका उपदेश अमूल्य है ।

भीष्म--ख़ैर, मैंने आज सुना है कि काशिराज ने अपनी तीन कन्याओं, अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका के लिए स्वयम्बर रचा है ।

विचित्र०--किन्तु-उसने हमारे पास निमंत्रण नहीं भेजा ।

भीष्म--उसने हमारा बड़ा अपमान किया। मेरी इच्छा है कि मैं उस स्वयम्बर में जाऊँ। तुम्हारे विवाह के लिए कन्या लाने के साथ ही साथ उसको इस अपमान का स्वाद चखाऊं।

(तीनों का प्रस्थान)

—:०:—:०:—

दूसरा अंक।

दूसरा दृश्य।

स्थान—राजा काशिराज का स्वयम्बर-मण्डप।

[अनेक राजा बैठे हैं दास दासियां, अपने अपने स्थान पर खड़ी हैं]

(गाने वालियों का गाना और नाचना)

गाना (कोरस)

बलहारियां–कैसी खिलीं आज फुलवारियां।
डार२ पे कैसी बहार छाई कैसी बहार छाई, चलती शीतल बयारियां,
कैसी खिलीं आज फुलवारियाँ–बलहारियां।
पूरन हुई आस मनकी, आस मनकी, आनन्द मङ्गल भयो भारियां,
कैसी खिलीं आज फुलवारियां–बलहारियां।
स्वयम्बर की धूम मची है-धूम मची है-हर्षित हैं सब नर नारियाँ-
कैसी खिलीं आज-फुलवारियां–बलहारियां।
आओरी सखियां मङ्गल गावें, मङ्गल गावे-नाचें छुनना छूम सारियां
कैसी खिलीं आज फुलवारियां–बलहारियां।

एक दास–विचित्र सजधज अनोखे रंगढंग से आज देखो मुख [illegible]र आई।

दूसरा--समस्त फूलों ने आंखे खोलीं कली कली तक है मुस-
कराई।

तीसरा--हरएक डाली है झूमती और तान पक्षी सुना
रहे हैं।

चौथा--चमन से ठंडी हवा के झोंके बधाई देने को आ
रहे हैं॥

(एक दास आता है)

दास--सभ्यगण, सावधान, महाराज राजकुमारियों सहित
पधारते हैं।

(आगे आगे राजा काशिराज और पीछे उनकी तीनों
कन्यायें अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका हाथ में जयमाल
लिये सखियों सहित आती हैं।)

काशिराज--(अपने स्थान पर खड़े होकर) वीर राजकुमारो, मैं
आप लोगों का अत्यन्त अनुगृहीत हूं कि आप
ने मेरे निमन्त्रण को स्वीकार करके इस
स्वयम्बर में आने का कष्ट उठाया। स्वयम्बर को
सुशोभित किया और मेरा गौरव बढ़ाया।
(तीनों कन्याओं से) पुत्रियो, इस स्वयम्बर में
अनेक राजा तथा राजकुमार उपस्थित हैं तुम
में से जो जिसको अपना पति बनाना चाहे, वह
उसके गले में जयमाल डाल दे।

(तीनों कन्यायें हाथ में जयमाल लेकर आगे बढ़ती हैं
साथ साथ सखियां गाती हुई चलती हैं।)

गाना (कोरस)

चलो चलो कुमारियां, प्यारियां दुलारियां न

तन, मन, धन सब सखियां तुम पे डारें वारियां—चलो चलो
(भीष्म का तीन योद्धाओं सहित प्रवेश)

भीष्म—ठहरो—इतनी जल्दी मत करो।

काशिराज—ऐं! तुम कौन?

भीष्म—स्वर्गवासी राजा शान्तनु का पुत्र भीष्म।

काशिराज—भीष्म! धीवर की कन्या के साथ विवाह करके क्षत्रिय-कुल में दाग लगाने वाले शान्तनु का पुत्र भीष्म! किन्तु मैंने तो तुम्हें निमन्त्रण नहीं भेजा, फिर तुमने यहां आने का कष्ट क्यों उठाया?

भीष्म—तुमने निमन्त्रण न भेज कर जो हमारा अपमान किया है उसका बदला लेने के लिए।

काशिराज—तुम और बदला! अरे भीष्म, तू यदि इसी योग्य होता तो अपना राज्य एक धीवर कन्या के हाथ क्यों बेंच डालता। तू भला बदला क्या ले सकता है। यदि तू अपने अहंकार-पूर्ण मस्तिष्क में यह विचार रखता है तो बड़ी भूल करता है।

भीष्म—मैंने जो कुछ किया अपना कर्तव्य समझ कर किया, केवल पिता को सुखी करने के लिए राज्य से हाथ उठा लिया। और—

राज्य ही कुछ त्याग करने को न मैं तय्यार था।
देह बिक जाती मेरी यह भी मुझे स्वीकार था॥

काशिराज—(हँस कर) पिता को सुखी करने के लिए! धन्य हैं वे पिता जो काम के वश होकर अपने पुत्र के मुख का ग्रास छीन लेते हैं और धन्य है वह पुत्र जो

अपने अधिकार के खून से पिता की कामवास-
नाओं को सींचते हैं।

भीष्म—नहीं काशिराज, तुम भूलते हो, पिता ने मेरे मुख का
ग्रास नहीं छीना। मैंने अपने अधिकारों के खून से
आत्म-त्याग का वृक्ष सींचा है।

काशिराज—अरे मूर्ख, आत्म-त्याग किसके लिए? एक ऐसे
दुर्बल-हृदय पिता के लिए जो अपने राज्य को
एक धीवर कन्या के हाथ से भी न बचा सका।
आत्म-त्याग किसके लिए। ऐसे पिता के लिए
जो काम के हाथ इतना बिक गया कि अपनी
मान-मर्यादा का भी ध्यान न रहा!

भीष्म—अज्ञान काशिराज, सत्यवती धीवर कन्या होते हुए
भी सब गुणों से परिपूर्ण स्त्री-रत्न है। सत्यवती
वह है जिसके लिए पराशर इत्यादि महर्षि लोलुप
रहे। क्या तुझे नहीं मालूम कि कमल कीच में
उत्पन्न होकर भी देवताओं और राजाओं की
शोभा बढ़ाता है, और हीरा पत्थर होते हुए भी
रत्नों का राजा समझा जाता है।

काशिराज—तू अपने और पिता के बुरे कामों को तर्क के
परदे में छिपाना चाहता है।

भीष्म—काशिराज, तुम्हारे कटु वाक्यों की तलवार मेरे पिता
के कीर्ति-रूपी समुद्र को नहीं काट सकती। तेरे
दोषारोपण से मेरे और पिता के चरित्र पर दाग़
नहीं आ सकता, चन्द्रमा की ओर मिट्टी फेंक कर
कोई उसे धुंधला नहीं बना सकता। यदि वाद-

विवाद बढ़ाना न चाहते हो तो जो मैं कहता हूं सुनो और उसी के अनुसार कार्य करो।

काशिराज—अर्थात्—

भीष्म—अपनी तीनों कन्याओं को करो मेरे साथ।

(उपस्थित राजाओं में से एक उठ कर)

राजा—भीष्म, जरा ज़बान संभाल कर बात करो, क्या तुम मुझ से परिचित नहीं हो ?

भीष्म—शाल्वराज, मैं तुम से भली भांति परिचित हूं किन्तु इससे क्या ? मैं अपना काम नहीं रोक सकता।

शाल्वराज—तुम इन कन्याओं को नहीं लेजा सकते।

भीष्म—इसका उत्तर अवसर देगा।

शाल्वराज—क्या तुम मुझ से अधिक बलवान हो ?

भीष्म—इसका उत्तर युद्ध देगा।

काशिराज—भीष्म, यदि तुम अपना भला चाहते हो तो चुपके से लौट जाओ।

भीष्म—काशिराज, यदि अपना भला चाहते हो तो कन्याओं को चुपके से मेरे साथ कर दो, झगड़ा न बढ़ाओ।

शाल्वराज—यह नहीं होगा।

भीष्म—यही होगा।

काशिराज—बस, मैं तुम्हें हुक्म देता हूं कि निकल जाओ।

भीष्म—(तलवार निकाल कर) जिसे मेरे सन्मुख आना हो, आओ! (अपने साथी योद्धाओं से) वीरो, इन कन्याओं को ले जाओ।

(योद्धा कन्याओं को उठा ले जाते हैं सब लोग उन पर आक्रमण करते हैं, भीष्म सबको परास्त करते हैं—टेबला)

—:४४:—:४४:—

दूसरा अंक।

तीसरा दृश्य।

स्थान—सीताराम का घर।

[सीताराम का प्रवेश]

सीताराम—हात तेरे कलियुग की ऐसी तैसी। बस चले तो काले-पानी भिजवा दूं। स्कूल क्या है कलियुग का अड्डा है। जाति-पांति का कोई भेद ही नहीं। उसी तख्ते पर ब्राह्मण का पुत्र बैठा है और उसी तख्ते पर मोची का लाल डटा है। यह स्कूल बनाने वाले भी मुझे कोई कलियुग के भाई-बन्द मालूम होते हैं। किन्तु, हैं एक ही काइयाँ। मुझे धोका देने के लिए सब लड़कों को कोट, गोल टोपी तथा अंग्रेज़ी जूता पहना कर बिठाया, जिससे मैं उनकी जाति न जान सकूं। किन्तु परिडत सीताराम तो ठहरे सर्व-गुण-निधान और ब्राह्मण होने से सबके गुरू, मुझसे भला वह कहां जीत सकते हैं। मैंने भी वह युक्ति निकाली कि इनाम का काम किया। अब पूछिये, वह कौन सी युक्ति है। मुझे बताने में तो कोई हानि नहीं क्योंकि विद्या का छिपाना पाप है किन्तु डर यह है कि कोई विपक्षी न सुने। ख़ैर, अब बताये ही देता हूं। आप भी न क्या याद करेंगे-सुनिये, मैंने चुचकार पुचकार कर हर एक लड़के से उसकी जाति पूछ ली और

वह मेरी पट्टी में ऐसे आ गये कि सबने साफ़ साफ़ बता दी । आप हँसते क्यों हैं? इसमें हँसने की क्या बात है? बस चले तो काले-पानी भिजवा दूं । अरे साहब, आजकल जो अपनी जाति साफ़ २ बता दे उसे सतयुगी आदमी समझना चाहिए । ख़ैर साहब, तो स्कूल वालों ने तो मुझे धोका देना चाहा था किन्तु मैं अपने विद्या-बल से बच गया । भला हम ब्राह्मण शूद्रों और अब्राह्मणों को विद्या पढ़ायें तो फिर हमें कोई टके को क्यों पूछे? जो कुछ रहा-सहा आदर है वह भी सब मिट्टी में मिल जावे । मेरा बस चलता तो इन छापेखानों को एकदम बन्द करवा देता । विद्या की मर्यादा इन्हों ने ही घटाई है । (ठंढी सांस भरता है) हा, यदि वेद-शास्त्र छप न गये होते तो आज लोग हमारे चरण पकड़ते फिरते और हम उनसे मनमानी सेवा लेकर कभी एक आध अच्छर बता दिया करते । बस चले तो काले-पानी भिजवा दूँ ।

(चञ्चला का प्रवेश)

चञ्चला—अरे, तुम आज स्कूल नहीं गये ।

सीताराम—क्या करूं स्कूल जाके?

चञ्चला—लड़के पढ़ाने के लिए ।

सीताराम—अरे, यह लड़के पढ़ाना है या कबूतर चुनाना ।

चञ्चला—कबूतर चुनाना कैसा ?

सीताराम—मैं अपने विद्या रूपी दाने को अनेक जाति के कबूतर रूपी लड़कों को चुनाऊं, वह चुनकर उड़ जांय और मैं मुँह ताकता रह जाऊं।

चंचला—तुम्हारी बातें कुछ मेरी समझ में नहीं आतीं।

सीताराम—हमारी बातें समझने के लिए ढाई मन का दिमाग़ होना चाहिए।

चञ्चला—तो क्या अब स्कूल न जाओगे।

सीताराम—भूल कर भी नहीं।

चञ्चला—क्यों क्या कारण?

सीताराम—अरी वहां सब जाति के लड़के पढ़ाना पड़ते हैं। भला मैं शूद्रों को वेद शास्त्र पढ़ाऊंगा?

चञ्चला—क्यों हानि क्या है?

सीताराम—बड़ी भारी हानि है।

चञ्चला—क्या हानि है?

सीताराम—अरी यह नाई धोबी जो वेद पढ़ जांयगे तो झट जनेऊ डाल कर ब्राह्मण बन जाँयगे। बस चले तो काले-पानी भिजवा दूं।

चञ्चला—नाई, धोबी यों ही जनेऊ डाल कर ब्राह्मण बन सकते हैं, उन्हें मना कौन करता है?

सीताराम—किन्तु जब तक पढ़े न हों उन्हें कोई ब्राह्मण न समझेगा।

चञ्चला—तो सब ब्राह्मण भी तो पढ़े नहीं होते।

सीताराम—नाई, धोबी, मोची चाहे जितने जनेऊ डाले किन्तु यदि पढ़ा न होगा तो उस की पोल एक न एक दिन खुल ही जायगी। बस चले तो काले-पानी भिजवा दूं।

चञ्चला—और जो पढ़ा-लिखा होगा ?

सीताराम—तो उस की पोल देर में खुलेगी और सम्भव है न भी खुले ।

चञ्चला—तुम्हारी बातें पागलों की सी होती हैं ।

सीताराम—शूद्रों को वेद पढ़ाने में एक और हानि है ।

चञ्चला—वह क्या ?

सीताराम—वह जहाँ चाहेंगे जूता पहने वेद-मन्त्र पढ़ने लगेंगे । बस चले तो काले-पानी भिजवा दूं ।

चञ्चला—अच्छा ख़ैर, इन बातों को छोड़ो, मैं इस समय एक आवश्यक बात पूछने आई हूं ।

सीताराम—कहो ।

चंचला—हमारे घर के पास जो शम्भूनाथ का घर है उन की स्त्री एक अध्यापिका से हिन्दी पढ़ती है, जो तुम कहो तो मैं भी पढ़ा करूं ।

सीताराम—ऐं ! तुम पढ़ोगी ?

चञ्चला—हाँ, क्यों ?

सीताराम—बस चले तो काले-पानी भिजवा दूं । अरी भला कहीं स्त्रियाँ भी पढ़ती हैं ।

चञ्चला—क्यों क्या हानि है ?

सीताराम—हमारा और हमारे ऐसे जितने विद्वान हैं उन का कथन है कि स्त्रियां यदि पढ़ जांयगी तो पुरुषों की बराबरी करेंगी और जब जी चाहेगा तब—
(आंखें मटकाता है)

चञ्चला—इस का क्या अर्थ ?

सीताराम—वही, समझ जाओ !

चञ्चला—तुम्हीं कुछ बताओ?

सीताराम—यारों को चिट्ठी लिखेंगी, चिट्ठी!

चञ्चला—दूर निगोड़े, निर्लज्ज, ख़बरदार अब मुझ से बात न करना। (प्रस्थान)

सीता०—बस चले तो काले-पानी भिजवा दूं।

(आवाज़ का आना)

पण्डित जी—पण्डित जी!

सीता०—अरे कौन है—यहां चले आओ।

(अच्छे वस्त्र पहने एक मनुष्य का प्रवेश)

मनुष्य—पालागूं महाराज।

सीताराम—जय हो। कहो क्या काम है?

मनुष्य—महाराज, मेरे भाई की स्त्री मर गई थी, कल उस की तेरहीं है, ब्रह्मभोज होगा तो आप भी पधारने की कृपा कीजिएगा।

सीताराम—(मुह में पानी भर आने का भाव दिखाता है) भला, हमें क्या क्या खिलाओगे?

मनुष्य—जो चाहे खाइयेगा, पूरी कचौरी, लड्डू पेड़ा, बरफ़ी दही इत्यादि सब कुछ होगा जो इच्छा हो खाइयेगा।

सीताराम—ओ हो हो—क्यों जी तुम ने तेरहीं कल क्यों की, आज ही क्यों न कर दी?

मनुष्य—महाराज पण्डित ने कल ही बताई थी।

सीताराम—वह कोई मूर्ख पण्डित होगा। खाने-पीने का काम जितना जल्दी हो अच्छा है। अच्छा, भला दक्षिणा क्या दोगे?

मनुष्य—पांच रुपै ।

सीताराम—ऐं ! पांच रुपै ?

मनुष्य—हाँ, पांच रुपै ।

सीताराम—तुम बड़े धनी आदमी मालूम पड़ते हो ।

मनुष्य—सब आप की कृपा है । इस साल चमड़े का भाव एकदम बढ़ गया इस से बड़ा लाभ हुआ ।

सीताराम—ऐं ! चमड़ा ? तो क्या तुम चमार हो ?

मनुष्य—हाँ महाराज मैं चमार हूं ।

सीताराम—(सिर खुजला कर) दक्षिणा पांच रुपै दोगे ना ?

मनुष्य—हाँ महाराज, पांच रुपै ।

सीताराम—भाई चमार क्या कुछ बुरे थोड़े होते हैं । चमार भी तो आखिर मनुष्य ही हैं और हमारे लिए तो सब एक हैं, ब्रह्म सब में है । और चमार कोई जाति थोड़ी ही है, यह तो व्यवसाय है । भाई तुम बड़े भले आदमी हो-अच्छा तो कल ठीक समय पर आप की सेवा में आऊंगा ।

मनुष्य—अच्छा तो आज्ञा दीजिये ।

सीताराम—पधारिये । मेरे योग्य कोई काम हो तो बताइयेगा ।

मनुष्य—सब आप की कृपा है ।

सीताराम—चलिये द्वार तक आप को पहुंचा आऊं ।

सीताराम—(चलते चलते अपनी ओर इशारा कर के) बस चले तो ऐसे आदमी को काले-पानी भिजवा दूं ।

(प्रस्थान)

दूसरा अङ्क ।

चौथा दृश्य ।

स्थान—राजभवन का एक भाग ।

(अम्बा और भीष्म का प्रवेश)

अम्बा—भीष्म, तुम क्या समझ कर मुझे हर लाये ?

भीष्म—तुम्हारा और तुम्हारी दोनों छोटी बहनों का विवाह राजा विचित्रवीर्य के साथ किया जायगा ।

अम्बा—भीष्म, तुम्हारा यह कार्य अन्याय से भरा हुआ है ।

भीष्म—यह क्यों ?

अम्बा—बहुत दिन हुए मैंने अपने हृदय में शाल्वराज को अपना पति मान रक्खा है क्योंकि शाल्वराज भी मुझ से प्रेम करता है। यदि स्वयम्बर होता तो मैं उन्हीं के गले में जयमाल डालती । ऐसी दशा में मुझे हर लाकर तुम ने हमारा प्रेम-बन्धन काट दिया, यह बड़ा अनर्थ किया ।

(भीष्म सोच में पड़ जाते हैं)

अम्बा—यदि तुम ने मेरा विवाह राजा विचित्रवीर्य के साथ कर भी दिया तो क्या लाभ होगा ? मेरा हृदय तो शाल्वराज के प्रेम में व्याकुल रहेगा ।

भीष्म—सुन्दरी, तो अब तुम क्या चाहती हो ?

अम्बा—मैं चाहती हूं कि यदि तुम मुझे छोड़ दो तो मैं शाल्वराज के पास चली जाऊं और उन से विवाह कर के अपना जीवन सुखपूर्वक बिताऊं ।

मिलेगा प्राणपति, जीवन के दिन सुख से बिताऊंगी।
तुम्हारी न्याय-प्रियता का सदा गुणगान गाऊंगी॥

भीष्म—अम्बे, मैं नहीं चाहता कि मैं तुम्हारे प्रेम-बन्धन को अपनी स्वार्थ की तलवार से काट दूं। जलते हुए हृदयों को शीतल करना, व्यथितों को शान्त बना देना मेरा काम है, मेरा मूल मन्त्र वह है कि त्याग जिस का नाम है।

अम्बा—भीष्म, तुम्हारी सहृदयता धन्य !

भीष्म—जाओ अम्बे, मैं तुम्हे स्वतन्त्र करता हूं।

(भीष्म और अम्बा का प्रस्थान)

दूसरा अंक।

पांचवां दृश्य।

स्थान—शाल्वराज का राज-भवन।

(शाल्वराज लेटे हैं गाने वालियां गा रही हैं)

गान (कोरस)

सखी री अब कैसे सहूं विरह की पीर।
कारे कारे बदरा छाये-शीतल चलत समीर-सखीरी अब०
श्याम बिना मोहे चैन न आवत, नैन बहावत नीर-सखी री अब०
मन मारी चहूं ओर फिरत हूं, कोउन बंधावत धीर-सखी री अब०

(एक दास का प्रवेश)

दास—राजन्, काशिराज की कन्या राजकुमारी अम्बा श्रीमान् के पास आना चाहती हैं।

शाल्वराज—(उठ कर बैठ जाता है) राजा काशी की कन्या अम्बा !

दास—जी हां।

शाल्वराज—जाओ उसे यहाँ आदर सहित ले आओ।

दास—जो आज्ञा।

(प्रस्थान)

शाल्वराज—(स्वगत) काशिराज की कन्या अम्बा और यहां ! उसे तो भीष्म हर लेगया था !

(अम्बा का प्रवेश)

शाल्वराज—(खड़े होकर) अम्बा तुम यहां कहां ? तुम ने भीष्म के पञ्जे से कैसे छुटकारा पाया ?

अम्बा—प्राणेश, तुम्हारा प्रेम सच्चे मित्र की तरह आड़े आया, आंखों से आंसू बन कर बहा और मुख से आह बन कर निकला। उन आंसुओं ने भीष्म का हृदय गला दिया, आहों से उसका पत्थर सा कलेजा पसीज गया। अन्त को विवश होकर उसने मुझे मुक्त कर दिया।

शाल्वराज—अच्छा तो तुम अब यहां क्या इच्छा लेकर आई हो ?

अम्बा—हृदय का उपहार देने और प्रेम की भिक्षा मांगने।
यह हृदय सेवा में लाई हूं इसे ले लीजिए,
इस के बदले में मुझे बस प्रेम-भिक्षा दीजिए।

शाल्वराज—जिसके साथ इतना समय बिताया, क्या उसने तुम्हे नहीं अपनाया ?

अम्बा—प्रियतम, जिस प्रकार एक म्यान में दो तलवारें नहीं आ सकतीं; उसी प्रकार एक हृदय में दो प्रेम-प्रतिमायें नहीं समा सकतीं। राजन्, मेरे हृदय में तुम्हारी मूर्त्ति का स्थान है ऐसी दशा में दूसरे को स्थान मिलना क्या आसान है?

इस हृदय में आप का स्थान है,
रात दिन बस आपका ही ध्यान है।
दूसरे की हो पहुंच सम्भव नहीं,
क्या हृदय अत्तार की दूकान है?

शाल्वराज—अम्बे, भीष्म ने स्वयम्बर में मुझे परास्त करके तुम को छीन लिया। किन्तु उसने तरस खाकर तुम्हें छोड़ दिया। अब उसके छोड़े हुए शिकार पर दांत लगाऊं, उसकी निकाली हुई स्त्री को अपनी अर्द्धाङ्गिनी बनाऊं। मुझे यह कैसे स्वीकार हो सकता है, क्या शाल्वराज ऐसा अपमान सहने के लिए तय्यार हो सकता है? कदापि नहीं।

अम्बा—प्राणनाथ, तुम तो मुझ से प्रेम करते थे। क्या वह प्रेम भीष्म से हारने के कारण उत्पन्न हुई लज्जा के रूप में निकल गया, क्या अब तुम्हारा हृदय ही बदल गया?

शाल्वराज—जिस हृदय में तुम्हारा प्रेम निवास करता था अब उसमें घृणा का वास है, भीष्म का त्यागा हुआ आहार होने के कारण तुम में रुचि होने के बदले अरुचि का विकास है।

अम्बा—तो क्या भीष्म ही मेरे सर्वनाश का मूल है।

शाल्वराज—निःसंदेह इसके प्रतिकूल समझना भूल है।

अम्बा—नाथ, मुझ पर दया करो, तरस खाओ। इस हृदय की ओर देखो, इसका एक एक परिमाणु तुम्हारा हो चुका है, तुम्हारे ही लिए मेरा सर्वस्व खो चुका है।

शाल्वराज—अम्बे, इस वाद-विवाद से कोई लाभ न निकलेगा, तुम्हारी चिकनी-चुपड़ी बातों से मेरा हृदय न पिघलेगा।

तेरी इन मीठी बातों से हृदय मेरा न पिघलेगा।
यह वह तिल ही नहीं हैं जिनसे कि कुछ तेल निकलेगा॥

अम्बा—तो मैं अब कहां जाऊं?

शाल्वराज—मैं कहाँ बताऊँ।

अम्बा—(घुटने टेक कर) नहीं, नहीं राजन्, मुझे मार्ग में अटकने वाले रोड़े की तरह न ठुकराओ।

शाल्वराज—ईश्वर के लिए बला की तरह मेरे पीछे न पड़ जाओ।

अम्बा—मेरे प्रेम का मूल्य समझो।

शाल्वराज—मेरी बात का अर्थ समझो।

अम्बा—मेरी जवानी पर तरस खाओ।

शाल्वराज—बस जाओ, मेरा सर न फिराओ।

गाना

शाल्वराज—जा कर न रार मोसे हठीली नार काहे बात बनावत बार बार।

अम्बा—मेरे हो प्यारे प्राण-आधार, तन मन धन तुम पे डारूं वार, मोहे मन से काहे दिया उतार।

शाल्वराज—चल चल दूर हो, निकल,यहां से, क्यों खाती है
मेरे कान ।

अम्बा—कैसी करूं मैं हा भगवान !

शाल्वराज—

चल क्यों होती है गले का हार ।
जा कर न रार मोसे हठीली० ॥

शाल्वराज अम्बा को ढकेल कर चला जाता है
अम्बा बेहोश होकर गिर जाती है)

——:०:——

दूसरा अंक ।

दृश्य छठवां ।

स्थान—रास्ता ।

[अम्बा का शोक करते हुए प्रवेश]

गाना

मैं इधर की रही ना उधर की रही—
मेरी आशायें सब धूल में मिल गईं—
प्राण प्यारे ने भी मुझ को छोड़ दिया—
प्रेम-बंधन जो था सारा तोड़ दिया ।
हाय मेरी जवानी अकारथ गई—
मेरी आशायें सब धूल में०
भीष्म ने ही यह सारा अनर्थ किया—
उस के द्वारा मेरा सर्वनाश हुआ ।
उसके हाथों ही मैं बरबाद हुई—
मेरी आशायें सब धूल में मिलगईं ।

अब तो मैंने यही जी में है प्रण किया-
इसका बदला अवश्य उस से लेना होगा-
इस कलेजे में ठंढ़क पड़ेगी तभी-
मेरी आशायें सब धूल में०।

अम्बा—[स्वगत] हा, मेरी सारी आशाओं पर पानी फिर गया। मेरा कहीं ठिकाना न रहा। भीष्म, दुष्ट भीष्म तूने ही मुझे दीन-दुनियां से खोया, तूने ही मेरे सर्वनाश का बीज बोया। तूने ही मुझे गली गली ठोकर खिल-वाई। तूने ही मेरे हृदय में प्रतिहिंसा की आग भड़काई। अब यह आग तेरे रक्त के छींटों बिना किसी प्रकार न बुझेगी।
तेरा ही रक्त अब यह प्यास बदले की बुझावेगा,
बिना हत्या किये तेरी न मुझको चैन आवेगा।

बस बदला—बदला, आज से मेरे शेष जीवन का उद्देश यही रहेगा। जबतक भीष्म से बदला न लेलूंगी तब तक चैन से न बैठूंगी। बस अब परशुराम के पास जाती हूं और उन से युक्ति पूछ कर भीष्म को मज़ा चखाती हूं।

गाना।

नागिन बन कर डाइन बनकर खाऊंगी कलेजा
तेरा--ठंडा होगा तब जी मेरा—नागिन बनकर०—।
रक्त से तेरे प्यास बुझाऊंगी, इस संसार से तुझे उठाऊंगी
जब तक बदला अपना न लूंगी, चैन से कभी न बैठूंगी,
तरसाऊंगी, तड़पाऊंगी, कल्पाऊंगी, हां-नागिन बन कर०

(प्रस्थान)

—:+:—

दूसरा अंक।

सातवां दृश्य।

स्थान—वन।

(परशुराम तथा भीष्म का प्रवेश)

भीष्म—गुरुदेव आपने मुझे किस लिए सेवा में बुलाया है?

परशुराम—वत्स, तुमने अम्बा को जो क्लेश पहुंचाया, उसका हाल उसने हमको जा सुनाया और सहायता चाही।

भीष्म—स्वामी, मैंने अम्बा को क्या कष्ट पहुंचाया, यह अब तक मेरी समझ में न आया?

परशुराम—तुम उसे स्वयम्बर से हर लाये और फिर अपने घर से निकाल दिया; इस कारण शाल्वराज ने भी उसे ग्रहण नहीं किया, और अब वह कहीं की न रही।

भीष्म—मैंने स्वयम् उसे घर से नहीं निकाला, मैं तो उसका विवाह भी राजा विचित्रवीर्य से करने वाला था किन्तु उसने मुझ से मुक्ति के लिए प्रार्थना की, मुझे दया आ गई और मैं ने उसे स्वतंत्र कर दिया।

परशुराम—उस समय उसे यह आशा थी कि शाल्वराज उस से विवाह कर लेगा।

भीष्म—किन्तु यदि शाल्वराज ने ऐसा नहीं किया तो इस में मेरा अपराध क्या?

परशुराम—तुम्हारा ही अपराध है। यदि तुम उसे स्वयम्बर से न हर लाते तो शाल्वराज उस से अवश्य विवाह कर लेते।

भीष्म—तो अब क्या हो ?

परशुराम—तुम स्वयम् उस से विवाह करो।

भीष्म—(आश्चर्य से) कौन, मैं ?

परशुराम—हां, तुम।

भीष्म—किन्तु गुरुदेव मैंने तो जन्म भर अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा की है।

परशुराम—उस प्रतिज्ञा को तोड़ दो।

भीष्म—क्या आपका यह उपदेश !

परशुराम—हां, मेरा उपदेश।

भीष्म—किन्तु यह तो असम्भव है—

> है क्षत्री का धर्म्म प्रतिज्ञा अपनी निभावे।
> प्राण भले ही जांय न अंतर उसमें आवे॥

परशुराम—किन्तु तुम्हें हमारी बात मान कर प्रतिज्ञा तोड़ना पड़ेगी।

भीष्म—स्वामी !

> आपकी हो आज्ञा तो खाल तन की खींच दूं।
> पद-कमल यह आपके, अपने लहू से सींच दूं॥
> हो जो इच्छा आपकी सर काट कर आगे धरूं।
> आज्ञा हो तो हृदय को चीर कर बाहर करूं॥
> इन कार्यों के वास्ते तो दास यह तय्यार है।
> पर प्रतिज्ञा तोड़ना मुझको नहीं स्वीकार है॥

परशुराम—भीष्म हठ न करो, मेरे क्रोध की आग न भड़काओ। यदि अपना भला चाहते हो तो अम्बा से विवाह रचाओ अन्यथा मैं तुम से युद्ध करके तुम्हें प्राण-दण्ड दूंगा।

भीष्म—गुरुदेव, गुरु और शिष्य का भी कहीं युद्ध हुआ है, यह कैसी उल्टी हवा है ?

परशुराम—यदि युद्ध नहीं करना चाहते तो अम्बा से विवाह करो।

भीष्म—(परशुराम के चरण पकड़ कर) स्वामी, अम्बा से विवाह करना मेरा कर्तव्य नहीं और आप से युद्ध करने की मुझ में शक्ति नहीं।

परशुराम—मूढ़, तुझे विवाह अवश्य करना पड़ेगा।

भीष्म—(चरण छोड़ कर) विवाह तो त्रिकाल में भी नहीं हो सकता, मैं अपनी प्रतिज्ञा नहीं खो सकता।

है धिक्कार मुझे जो अपने जीवन तक यह प्रण न निभाऊं।
मरजाऊं, और मर कर भी सच्चे क्षत्री की गति ना पाऊं॥

परशुराम—मेरी आज्ञा से भी नहीं ?

भीष्म—इस विषय में आपकी आज्ञा का कोई मूल्य ही नहीं।

परशुराम—तो युद्ध के लिए तय्यार हो जाओ।

भीष्म—मेरी क्या शक्ति है जो गुरू से युद्ध करूं।

परशुराम—(अस्त्र शस्त्र संभाल कर) बस बातें न बनाओ, लो मेरा वार बचाओ।

(परशुराम का भीष्म से युद्ध करना, भीष्म का परशुराम को परास्त कर देना।

भीष्म—महर्षि आप मेरे गुरु हैं और ब्राह्मण, इस लिए मैं आप के प्राण न लूंगा। मैं आपको छोड़ता हूं और धृष्टता के लिए क्षमा चाहता हूं। (भीष्म परशुराम को छोड़ देते हैं)

परशुराम—भीष्म, तुम अद्वितीय वीर और योद्धा हो, मुझे तुम्हारे ऐसे शिष्य पर जितना गर्व हो, थोड़ा है।

भीष्म—(हाथ जोड़ कर) नाथ, मुझे अधिक लज्जित न कीजिए।

परशुराम—मैं अम्बा से जाकर कहे देता हूं कि मैं उसकी सहायता नहीं कर सकता, अब उसका जी चाहे किसी और से सहायता ले, जी चाहे स्वयम् कोई युक्ति निकाले।

(दोनों का प्रस्थान)

—:o:—

दूसरा अङ्क।

आठवां दृश्य।

स्थान—पर्वत।

(पहाड़ पर अम्बा तपस्या कर रही है।)

गाना

नाथ पूरन आस कीजै
लीजै सुध अब बेग हमारी—नाथ पूरन०।
निस दिन सुमरन तुम्हरो करत हूं
तुम्हरो ही बस ध्यान धरत हूं
बार बार यह बिनती करत हूं
दरस दिखाओ अब त्रिपुरारी—नाथ पूरन०।

(पहाड़ का फटना और महादेव शंकर का प्रकट होना)

महादेव—अम्बे, मैं तेरी तपस्या से अत्यन्त प्रसन्न हुआ। मांग क्या वरदान मांगती है?

अम्बा—भगवन्, मैं यह वर-दान चाहती हूं कि भीष्म का बध कर सकूं-वह मेरे ही कारण प्राण गंवाये, मेरे ही हाथ से मारा जाय।

महादेव—पुत्री, ऐसा ही होगा, किन्तु इस जन्म में नहीं। तुम दूसरे जन्म में राजा द्रुपद के यहां शिखण्डी का अवतार लोगी और कौरव-पाण्डवों के महाभारत में भीष्म की मृत्यु का कारण बनोगी।

(महादेव का अन्तर्ध्यान हो जाना)

अम्बा—बस मेरा मनोरथ पूरा हुआ! अब जीना व्यर्थ है। बस यह शरीर त्यागूं और पुर्नजन्म लेकर भीष्म से अपना बदला लूं।

(अम्बा चिता लगा कर भस्म हो जाती है।)

[ड्राप]

दूसरा अङ्क समाप्त।

अङ्क तीसरा

प्रथम दृश्य।

स्थान–रास्ता।

(युधिष्ठिर, अर्जुन तथा कृष्ण का प्रवेश)

अर्जुन—कृष्ण, यदि भीष्म–पितामह के युद्ध की भीषणता ऐसी ही रहेगी तो हमारी विजय कैसे होगी ?

युधिष्ठिर—जब से उन्होंने युद्ध आरम्भ किया, तब से न जाने हमारे कितने योद्धाओं को मार दिया। हमारी सेना में वह ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे मृग–दल में सिंह। वृद्ध होते हुए भी इतना बल !

कृष्ण—भाई युधिष्ठिर, भीष्म–पितामह बालब्रह्मचारी होने के कारण अत्यन्त बलवान हैं, दूसरे वह इच्छा–मृत्यु भी हैं।

अर्जुन—इच्छा–मृत्यु कैसे ?

कृष्ण—जब उन्होंने राज्य–त्याग कर अपने पिता राजा शान्तनु का विवाह दासराज की कन्या सत्यवती से कराया था, उसी समय अपने पिता से इच्छा–मृत्यु का वर–दान पाया था।

युधिष्ठिर—तो क्या, जब तक वह स्वयम् मरना न चाहेंगे तब तक न मरेंगे ?

कृष्ण—कदापि नहीं।

अर्जुन—यदि यह बात है तो विजय उन के हाथ है।

कृष्ण—नहीं, यदि युक्ति से काम लोगे तो निश्चय तुम्हीं जीतोगे।

युक्ति ही से शेर भी बिल्ली बने,
युक्ति द्वारा मस्त हाथी भी फँसे।
युक्ति को यदि काम में तुम लाओगे,
तो विजय निश्चय तुम्हीं बस पाओगे॥

युधिष्ठिर—माधव, वह कौन सी युक्ति है, कुछ बताइये तो सही।

कृष्ण—धैर्य रखिये, घबराइये नहीं।

अर्जुन—मैं नहीं समझता कि इच्छा-मृत्यु के सामने कौन युक्ति चल सकती है। जब तक वह स्वयम् मृत्यु की इच्छा न करेंगे तब तक कैसे मरेंगे?

कृष्ण—हम ऐसी ही युक्ति निकालेंगे जिस से वह स्वयम् अपनी मृत्यु बुला लेंगे।

युधिष्ठिर—(आश्चर्य से) क्या ऐसी बात है?

कृष्ण—हां, ऐसी ही करामात है।

युधिष्ठिर—तो फिर उस युक्ति को शीघ्र काम में लाना चाहिए, यदि देर की जायगी, तो हमारी सेना बिल्कुल नाश हो जायगी।

कृष्ण—निस्सन्देह। अच्छा, मेरी बात ध्यान से सुनो, आज तुम पांचो भाई मिल कर भीष्म-पितामह के डेरे में जाओ। उन से कुछ देर तक इधर-उधर की बातें कर के युद्ध का विषय उठाना, और उन के द्वारा तुम्हारी जो कुछ हानि हुई हो उस का हाल बताना।

तत्पश्चात् इस दशा पर अपना हार्दिक दुख प्रकट कर के कहना कि दादा साहब अब आप के हाथ से कैसे प्राण बचेंगे। इस पर उन की बातों का उपयुक्त उत्तर देते हुए अन्त में बड़े दीन भाव से उन की मृत्यु का उपाय पूछना।

युधिष्ठिर—एं, उन की मृत्यु का उपाय! यह तो होगा अन्याय ?

अर्जुन—अन्याय के अतिरिक्त वह अपनी मृत्यु का उपाय किस प्रकार बता देंगे!

कृष्ण—अवश्य बता देंगे।

युधिष्ठिर—मेरी समझ में तो कदापि न बतावेंगे।

कृष्ण—युधिष्ठिर, तुम अभी भीष्म-पितामह के हृदय से परिचित नहीं हो वह बड़े आत्मत्यागी हैं। उन का समस्त जीवन त्याग ही में बीता है, त्याग ही द्वारा उन्होंने सब का हृदय जीता है। वह अन्त समय तक त्याग को न छोड़ेंगे।

अर्जुन—तो क्या वह इतना त्याग करेंगे, कि हमें अपनी मृत्यु का उपाय बता देंगे ?

युधिष्ठिर—हां, मुझ को अब याद आया, युद्ध आरम्भ होने के पूर्व उन्होंने मुझ से कहा था कि यद्यपि हम तुम्हारे विपक्षी होकर युद्ध करेंगे, तथापि सदैव तुम्हारा ही हित चाहेंगे। कभी कोई कष्ट पड़े तो हमारे पास आना।

अर्जुन—यदि यह बात है तो उन के पास अवश्य चलना चाहिए।

युधिष्ठिर—किन्तु माधव, तुम्हें भी हमारे साथ चलना पड़ेगा ।

कृष्ण—मेरे चलने की तो कोई ऐसी विशेष आवश्यकता नहीं।

अर्जुन—आवश्यकता क्यों नहीं, तुम्हें अवश्य चलना चाहिए।

कृष्ण—तो चलो मुझे चलने में कोई आपत्ति नहीं ।

(सब का प्रस्थान)

तीसरा अंक ।

दूसरा दृश्य ।

(युद्ध के मैदान में भीष्म का डेरा)

(वृद्ध भीष्म मृगछाला पर बैठे हैं सामने एक साधु भजन गा रहा है)

गाना ।

धन यौवन का मान न करिये
अन्त समय कोई काम न आवे—धन यौवन का० ।
माया का सब खेल बना है-या पर ध्यान न धरिये-धन० ॥
कर्म प्रधान विश्व रचि राखा-जो करिए सो भरिये-धन० ।
भवसागर के पार करन को-हरि को चिंतन करिये-धन० ॥

(एक दास का प्रवेश)

दास—महाराज, श्रीकृष्ण सहित पञ्च पाण्डव आप के दर्शनों के लिए आना चाहते हैं ।

भीष्म—उन्हें आदर सहित लाओ ।

दास—जो आज्ञा ।

(प्रस्थान)

भीष्म—(साधु से) अच्छा महात्मन्, फिर किसी समय पधार कर अपने भजनों से कान पवित्र कीजियेगा।

(साधु का प्रस्थान,
कृष्ण सहित पञ्च पाण्डवों का प्रवेश)
(सब पितामह को प्रणाम करते हैं)

भीष्म—वत्स, विजयी हो। कहो तुम सब प्रसन्न तो हो।

युधिष्ठिर—पितामह प्रसन्न तो क्या किसी न किसी प्रकार जीवित हैं।

भीष्म—(कृष्ण से)क्यों माधव, तुम तो आनन्द-पूर्वक हो।

कृष्ण—आप की कृपा है तो प्रसन्नता ही प्रसन्नता है।

भीष्म—(युधिष्ठिर से) धर्मराज, आज कैसे आये ?

युधिष्ठिर—पितामह, हम आप की शरण आये हैं अब हमारी लज्जा आप ही के हाथ है-

आपदा ऐसी पड़ी हे नाथ है,
इस समय कोई न देता साथ है।
आप की आये शरण होकर विवश,
लाज अब यह आप ही के हाथ है॥

भीष्म—धर्मराज, तुम्हें क्या दुख है, कुछ कहो तो ?

युधिष्ठिर—पितामह, आप के बाणों की वर्षा से हमारी सेना का नाश हो रहा है, बड़े बड़े योद्धा मारे जाते हैं, यह देख कर हमारा हृदय बड़ा हताश हो रहा है। अब आप ही बतावें कि हम अपनी विजय के लिए क्या उपाय करें।

अर्जुन—दादा जी, जिस दिन से आपने युद्ध आरम्भ किया है, उस दिन से मानो पराजय ने हमें अपना मुख

दिखाना आरम्भ कर दिया है। हा! हमारे कैसे कैसे वीर आप के बाणों का शिकार हुए—

आप के बाणों द्वारा मारे गये हमारे ऐसे वीर।
जिन की याद से फटती छाती, भर आता आंखों में नीर॥
यदि ऐसी ही भीषणता से आप करेंगे युद्ध सदा।
तो निश्चय है नाश स्रोत में बह आयेगा दल अपना॥

कृष्ण—वास्तव में पितामह यदि आप का युद्ध इसी प्रकार जारी रहेगा, तो हम लोगों को प्राण बचाने के लिए कहीं ठिकाना न मिलेगा।

भीष्म—तो क्या तुम चाहते हो मैं युद्ध ही न करूं या युद्ध करूं तो अपनी पूरी पूरी शक्ति काम में न लाऊँ? कृष्ण, धर्मराज, अर्जुन, यदि तुम अपने हृदयों में यह आशा लेकर आये हो तो बड़ी भूल कर रहे हो। यद्यपि यह मैं भली भाँति जानता हूं कि दुर्योधन ने तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय किया, और अब भी वह जो तुम्हारे साथ युद्ध कर रहा है यह भी बड़ा अधर्म कर रहा है, किन्तु यह सब जान-बूझ कर भी मैं उस का साथ नहीं छोड़ सकता। मैं उस का अन्न खाता हूं, उस की प्रजा के समान हूं ऐसी दशा में यदि मैं उस का साथ छोड़ दूं या युद्ध में लड़ने से जी चुराऊं तो अधर्मी बनूं। अपने कर्तव्य से गिर जाऊं। नमकहराम कहलाऊं। नहीं, नहीं, मुझ से ऐसा कदापि नहीं हो सकता—

रणक्षेत्र को छोड़ भला मैं भागूं कैसे।
जो है मेरा धर्म उसे मैं त्यागूं कैसे॥

साथ हूं जिस के और अन्न जिस का हूं खाता।
उस के प्रति कर्तव्य रहूंगा सदा निभाता॥
बन कर उसका विपक्षी यदि ईश्वर भी आयगा।
बच कर मेरे हाथ से कभी न जाने पायगा॥

कृष्ण—पितामह, धर्मराज, अर्जुन और मैं यह नहीं चाहते कि आप अपना कर्तव्य पालन न करें। आप की कर्तव्यशीलता, आप की धर्मपरायणता इतनी उत्कृष्ट है कि प्रत्येक क्षत्री को उस से सबक़ लेना चाहिए। हमारा तात्पर्य केवल यह है कि आप हम लोगों को कोई ऐसी युक्ति बतावें कि जिस से हमारा कुछ उपकार हो—इस कष्ट से उद्धार हो।

युधिष्ठिर—दादा, मैंने अपनी जान में आज तक स्वयम् कोई अधर्म का कार्य नहीं किया, अधर्म से मुझे बड़ी घृणा है फिर भला मैं यह कैसे चाहूं कि आप जो हमारे पूज्य हैं जो हमारे पथप्रदर्शक हैं, वही अधर्म का कार्य करें।

अर्जुन—नहीं नहीं, हम मर जाना स्वीकार करेंगे किन्तु न तो स्वयम अधर्म करेंगे, न किसी को अधर्म करने की सलाह देंगे।

भीष्म—धर्मराज, मेरा तुम पर सब से अधिक स्नेह है और उसका एकमात्र कारण यही है कि तुम ने धर्म को कभी नहीं छोड़ा, विवेक से कभी मुंह नहीं मोड़ा।

युधिष्ठिर—पितामह, इसमें मेरी कुछ करतूत नहीं है, यह सब आप की कृपा और आप ही के उपदेश का फल है।

भीष्म—माधव, दुर्योधन बड़ा अधर्मी है, बड़ा अन्यायी है उसका अन्याय यहां तक बढ़ा हुआ है कि कितनी ही बेर उसने मेरे लिए भी संदेह से भरे हुए कटु-वचनों का व्यवहार किया है। उसकी इस अनीति से मेरी इस संसार में कुछ भी प्रीति नहीं रही। वैराग्य ने मेरे हृदय में जगह करली है। मेरी इच्छा नहीं होती कि मैं अब अधिक दिनों तक इस संसार में रहूं। इस लिए मैं स्वयम चाहता हूं कि मेरा अन्त इसी युद्ध में हो जाय, ईश्वर मुझे इस युद्ध का हृदय-विदारक परिणाम न दिखाय।

अनाथों का रोना विकलना न देखूं।
वधुओं का पति हीन होना न देखूं॥
चला जाऊं संसार से शांति पूर्वक।
मैं अपने ही घर का उजड़ना न देखूं॥

बस, मेरा मरना ही तुम्हारी विजय का उपाय है।

युधिष्ठिर—पितामह, हम नहीं चाहते कि हमारा ऐसा बड़ा और हम से इतना अधिक प्रेम करने वाला संसार से उठ जाय।

भीष्म—युधिष्ठिर, बिना मेरी मृत्यु हुए तुम्हारी विजय होना उतना ही असम्भव है जितना कि बिना सूर्य के अस्त हुए नक्षत्रों का प्रकाशवान होना। इस कारण मैं तुम्हे सहर्ष आज्ञा देता हूं कि तुम लोग बेखटके हम पर अस्त्र प्रहार करो। इस से यह न समझना कि मैं तुम से कुछ रुष्ट होकर यह बात कह रहा हूं। नहीं धर्मराज, अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव, मैं तुम

लोगों से अत्यन्त संतुष्ट हूं, अत्यन्त प्रसन्न हूं। तुम लोगों ने सदैव मेरी मान मर्यादा की रक्षा की है, सदा मेरा आदर किया है इस लिए मैं नहीं चाहता कि इस युद्ध में तुम्हारी हार हो। मैं तुम्हे अपनी मृत्यु का उपाय बताता हूं उसके अनुसार कार्य करोगे तो अवश्य मुझ पर विजय पाओगे। सुनो, तुम्हारी सेना में राजा द्रुपद का पुत्र शिखण्डी वास्तव में स्त्री है पुरुषत्व इसे पीछे से प्राप्त हुआ है-इस कारण हम उस पर अस्त्र-प्रहार न करेंगे, स्त्री पर हथियार चलाना क्षत्रिय धर्म के प्रतिकूल है। बस तुमको यह भेद मालूम होगया अब जाओ और हमारे मारने का प्रयत्न करो।

(सब सर झुकालेते हैं। भीष्म सब को हाथ उठा कर आशीर्वाद देते हैं)

—:०:—

तीसरा अंक

तीसरा दृश्य

(रास्ता)

[शिखण्डी का प्रवेश]

प्रतिहिंसा, प्रतिहिंसा, और द्वेष, इन का मेरे हृदय में वास है। प्रतिहिंसा किसके प्रति, द्वेष किसके लिए, केवल भीष्म के लिए। न जाने भीष्म की ओर से मेरे हृदय में द्वेष की आग क्यों भड़का करती है, उसके सामने आते ही छाती क्यों धड़का करती है। मैं जब उसे देखता हूँ तो यही जी चाहता है कि उसके प्राण लेलूं. उसकी हत्या कर डालूं।

किन्तु मैं नहीं समझता कि भीष्म ने मुझे क्या हानि पहुंचाई है जो उसके प्राण लेने की बात मेरे हृदय में समाई है। मैं लाख चेष्टा करता हूं कि मेरे हृदय से यह भाव दूर हो जाय किन्तु यह मेरा पीछा नहीं छोड़ता, बार बार मेरे हृदय को भीष्म के प्राण लेने की ओर मोड़ता है। अपने पराये सब उसको पूज्य समझते हैं, आदर की दृष्टि से देखते हैं, उसके बल और पराक्रम की मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हैं, उसकी धर्म्म-परायणता, कर्तव्य-शीलता, और त्याग का राग अलापते हैं, उसके ब्रह्मचर्य-पालन, तथा दृढ़ प्रतिज्ञता की दुहाई देते हैं; किन्तु उसके यह सब गुण भी मेरे हृदय में धधकती हुई घृणा की आग बुझाने में असमर्थ हैं। यदि यह कहा जाय कि वह मेरा विपक्षी है इस कारण मैं उसके खून का प्यासा हूं-तो यह बात भी कुछ समझ में नहीं आती क्योंकि दुर्योधन, द्रोण, कर्ण भी मेरे विपक्षी हैं किन्तु उनके प्रति मेरे हृदय में ऐसा भाव नहीं, घृणा का इतना लगाव नहीं।

(कृष्ण सहित युधिष्ठिर और अर्जुन का प्रवेश)

कृष्ण—क्यों राजकुमार शिखण्डी, यहां खड़े क्या सोच रहे हो?

शिखण्डी—कुछ नहीं योंही ज़रा टहल रहा हूं।

कृष्ण—(मुसकरा कर) अच्छा टहल रहे हो!

युधिष्ठिर—अब टहलने का समय नहीं, चलो युद्ध के लिए तय्यार हो जाओ। आज तुम्हें भीष्म से युद्ध करना पड़ेगा।

शिखण्डी—(घबड़ा कर) एं। मुझे भीष्म से युद्ध करना पड़ेगा?

अर्जुन—हां, भीष्म से युद्ध करना पड़ेगा।

शिखण्डी—किन्तु, क्या मैं भीष्म से युद्ध करने योग्य हूं ?

अर्जुन—क्यों, क्या तुम योद्धा नहीं हो ?

शिखण्डी—योद्धा तो हूं, किन्तु भीष्म से लड़ने योग्य नहीं। जिसके सामने बड़े बड़े योद्धा नहीं टिक सकते उस के सामने मैं क्या टिक सकूंगा। मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि मैं भीष्म से युद्ध करके उन्हें मार डालूं, किन्तु जब मैं अपने दुर्बल तथा कोमल शरीर की ओर देखता हूं तो मुझे हताश होना पड़ता है।

कृष्ण—राजकुमार, इतना क्यों डरते हो ? भीष्म तुम्हारा बाल भी बांका न कर सकेंगे। हम और अर्जुन तुम्हारी रक्षा करेंगे।

शिखण्डी—यदि यह बात है—तो—ख़ैर—किन्तु।

युधिष्ठिर—राजकुमार—हमें एक विश्वस्त सूत्र से मालूम हुआ है कि भीष्म उसी समय मारे जायेंगे जब कि वह युद्ध के लिए तुम्हारे सामने आयेंगे इस कारण तुम साहस करो और युद्ध के लिए चलो।

शिखण्डी—(प्रसन्न होकर) यदि यह बात है तो मैं एक भीष्म क्या सहस्र भीष्मों से लड़ने के लिए तय्यार हूं।

कृष्ण—देखो राजकुमार जिस समय भीष्म तुम्हें अपने ऊपर हथियार चलाते देखेंगे तो उसी समय अपने हथियार फेंक देंगे, उस समय तुम शीघ्रता पूर्वक उन्हें मार डालना।

शिखण्डी—मुझे देख के भीष्म हथियार क्यों फेक देंगे ?

कृष्ण—वह तुम से बहुत डरते हैं, तुम्हें देखते ही उनके हाथ पैर फूल जांयगे, लड़ना वड़ना सब भूल जांयगे ।

(अर्जुन और युधिष्ठिर मुसकराते हैं)

शिखण्डी—क्या ? मुझ से डरते हैं ?

कृष्ण—हाँ, तुम से डरते हैं ।

शिखण्डी—ओह, यदि यह बात है तो उनकी मृत्यु मेरे हाथ है ।

कृष्ण—तो बस शीघ्र युद्ध के लिए तय्यार हो जाओ—आओ ।

(सब का प्रस्थान)

तीसरा अंक ।

चौथा दृश्य ।

(सीताराम का मकान)

(चंचला और चंचला के भाई गोवर्धन का प्रवेश)

गोवर्धन कोट पतलून कालर तथा टाई से सुसज्जित है)

चंचला—भइया गोवर्धन, तुम्हारे जीजा जी के मारे तो मेरा नाक में दम है । न कुछ करते हैं न धरते घर में बैठे बातें बनाया करते हैं । बातें करने में इतने कुशल हैं कि किसी को अपने सामने बोलने ही नहीं देते । क्या कहूं क्या न कहूं ।

गोवर्धन—बहन ? तुम इतनी चिन्ता क्यों करती हो । यदि तुम्हारी इन से नहीं पटती तो मेरे साथ चलो । मैं इस साल बी० ए० पास हो गया । अब शीघ्र

ही नौकरी लग जायगी, बस तुम मेरे ही पास रहना ।

चंचला—क्या बताऊं, मेरी बुद्धि तो कुछ काम ही नहीं करती ।

गोवर्धन—और यह आज सुबह से ग़ायब कहां हो गये ।

चंचला—कहीं निमन्त्रण खाने गये हैं ।

गोवर्धन—बस इन्होंने तो निमंत्रण खाना अपना व्यवसाय बना लिया है । किस के यहां गये हैं ?

चंचला—किसी चमार के यहां गये हैं ।

गोवर्धन—हैं, चमार के यहां !

चंचला—हां, चमार के यहां ।

गोवर्धन—एं, इतने बड़े पण्डित होकर चमार के यहां निमंत्रण खाने गये । उन्हें लज्जा भी न आई ।

चंचला—मैं तो मना करती रही किन्तु मेरी वह सुनते कब हैं ।

गोवर्धन—अच्छा आने तो दो देखो मैं कैसा ठीक बनाता हूं ।

चंचला—लो, वह आ गये ।

(सीताराम डकार लेते और पेट पर हाथ फेरते आता है)

गोवर्धन—जीजा जी प्रणाम ।

सीताराम—(डकार लेकर) एं, कौन, गोवर्धन, अरे तू कब आया ।

गोवर्धन—मैं अभी, घंटा भर हुआ आया था ।

सीताराम—घर में तो सब कुशल ?

गोवर्धन—आप की कृपा है ।

सीताराम—(डकार लेकर चंचला से) अरी कोई चूरन की गोली पड़ी है ?

गोवर्धन—इतना काहे को खा गये जो चूरन की आवश्यकता पड़ी।

सीताराम—अरे दिव्य भोजन थे, खाता न तो क्या करता।

गोवर्धन—तो क्या दिव्य भोजन इतना खाया जाता है कि चूरन बिना पचे ही नहीं?

सीताराम—हाय बस चले तो काले पानी भिजवा दूं।

गोवर्धन—जीजा जी भला एक बात तो बताइए। आप इतने बड़े पण्डित होकर चमारों के यहां भोजन करने गये—कोई सुनेगा तो क्या कहेगा।

सीताराम—अब कोई मेरा ही सा विद्वान यह बात पूछता तो मैं उसे उत्तर देता। तुझे इसाई को क्या उत्तर दूं—तेरी तो स्वयम् जाति पांति का कोई ठीक नहीं।

गोवर्धन—एँ—मैं इसाई हूं—आपने यह कैसे जाना?

सीताराम—इस कोट से, इस पतलून से इन छज्जेदार बालों से।

(गोवर्धन के बाल पकड़ कर हिलाता है)

गोवर्धन—यह तो आजकल का फ़ैशन है—इस से कहीं कोइ इसाई हो जाता है।

सीताराम—तो बच्चा ईसाई हो जाना भी आजकल का—यह क्या कहा था यह तो फेसन है फेसन।

चञ्चला—(गोवर्धन से) अच्छा तो मैं तेरे लिए भोजन बनाने जाती हूं।

सीताराम—अरे-इसके लिए भोजन बना कर क्या करोगी यह तो स्टेशन पर से डबलरोटी और मक्खन उड़ा। आया होगा। (डकार लेता है)

(चञ्चला सीताराम की ओर घूरती हुई जाती है)

सीताराम—(स्वगत) कैसी घूरती है जानो खा जायगी। भाई आगया है ना, इस से और शेर होगई। बस चले तो काले पानी भिजवा दूं।

गोवर्धन—हाँ तो यह आपने क्या कहा था कि इसाई हो जाना भी आजकल का फेशन है। भला कपड़े पहनने से कोई इसाई हो जाता है।

सीताराम—भइया-आजकल विचार के इसाई तो बहुत कम हैं फेसन के इसाई बहुत हैं। और फेसन की जो कहो तो आजकल कोट-पतलून धारी आदमी जो करे वह सब फेसन ही है—गधे पर बैठ कर निकले तो वह भी फेसन ही समझा जाये।

गोवर्धन—अब आप से ज़बान कौन लड़ाये, आप तो अपने आगे किसी की सुनते ही नहीं।

सीताराम—सुनूं तो तब जब मेरा ही सा विद्वान हो।

गोवर्धन—आप सा विद्वान तो शायद ही कोई हो।

सीताराम—इसमें क्या संदेह है, इसमें क्या संदेह है, इसमें क्या संदेह है?

गोवर्धन—अच्छा यह तो बताइए कि आप इतने बड़े पण्डित हो कर कुछ उद्योग नहीं करते। वृथा समय खोते हैं। यह अच्छी बात नहीं।

सीताराम—उद्योग नहीं करता हूं तो क्या तुम्हारी तरह कोटपतलून पहन कर मारा मारा फिरता हूं।

गोवर्धन—एँ ! मैं मारा मारा घूमता हूं ।

सीताराम—और नहीं क्या ।

गोवर्धन—यह कैसे ?

सीताराम—अच्छा तुम्हीं बताओ कि तुमने अभी तक क्या किया ?

गोवर्धन—अभी तक पढ़ा और बी० ए० पास किया ।

सीताराम—और अब क्या करोगे ?

गोवर्धन—नौकरी ।

सीताराम—भला कितने की नौकरी करोगे ?

गोवर्धन—अजी पन्द्रह बीस रुपै की तो मैं आज कर सकता हूं यों (चुटकी बजाता है) ।

सीताराम—(गोवर्धन की पीठ ठोंक कर) जियो मेरे शेर क्यों न हो । ख़ैर-यह भी बहुत है-कसेरु बेंचने वालों से अच्छे ही रहोगे ।

गोवर्धन—(कुछ बिगड़ कर) हैं हैं-यह क्या कहा इसका क्या अर्थ ?

सीताराम—बिगड़ो नहीं, धैर्य धर कर सुनो तो कहूं ।

गोवर्धन—अच्छा कहिए ।

सीताराम—कसेरु बेंचने वाले दिन भर बेंहगी लाद कर गली गली घूमते हैं तब कहीं उन्हें पन्द्रह बीस रुपै मिलते हैं-कहो हां ।

गोवर्धन—अच्छा ।

सीताराम—और तुम इसी कोट पतलून की आड़ में कुरसी पर बैठे ही बैठे पन्द्रह बीस पीट लोगे-अब कहो कसेरु वाले से अच्छे रहोगे या नहीं ।

(चञ्चला का प्रवेश)

चञ्चला—चलो भोजन तय्यार हो गया।

गोवर्धन—(सीताराम से) अच्छा भोजन कर लूं तो आप को इस बात का उत्तर दूंगा।

सीताराम—अच्छा अच्छा उत्तर देना, पहले पेट को तो समझा लो।

(गोवर्द्धन और चञ्चला चलने को उद्यत होते हैं)

सीताराम—(चञ्चला से) अरी मैं भी आऊं क्या ?

चञ्चला—क्या अभी पेट नहीं भरा ?

सीताराम—पेट तो भर गया था किन्तु इस गोवर्धना ने बकवा बकवा कर फिर ख़ाली कर दिया। बहुत नहीं, थोड़ा ही सा खाऊंगा।

(चञ्चला बड़बड़ाती हुई जाती है, उसके पीछे गोवर्धन और गोवर्धन के पीछे सीताराम डरते कांपते जाते हैं)

तीसरा अंक।

पांचवां दृश्य।

स्थान—रण भूमि।

(कुछ योद्धाओं सहित दुर्योधन तथा भीष्म का प्रवेश)

भीष्म—दुर्योधन, मुझे युद्ध करते नौ दिन बीत चुके हैं आज मैं युद्ध में सारी शक्ति लगा दूंगा, या तो विजय करूंगा या लड़कर अपने प्राण दे दूंगा।

दुर्योधन—पितामह-आपके युद्ध से शत्रुओं के छक्के छूट गये हैं उनके हृदय टूट गये हैं। जहां तक मेरा अनुमान है आज वह आपके सामने न ठहर सकेंगे।

भीष्म—दुर्योधन, मैं तो अपना कर्तव्य पालन ही कर रहा हूं और अन्त समय तक करूंगा किन्तु मैं यह कहे

बिना न रहूंगा कि तुम पाण्डवों के साथ अनीति का व्यवहार कर रहे हो। उनका कुछ अपराध नहीं अकारण ही उनसे लड़ रहे हो। अच्छा हो यदि अब भी तुम समझ-जाओ और उनसे सन्धि करलो क्योंकि वह कोई ग़ैर नहीं तुम्हारे ही भाई-बन्धु हैं।

दुर्योधन—पितामह, यह आप क्या कर रहे हैं, पाण्डवों से और संधि! यह तो त्रिकाल में भी न होगा। युद्ध में लड़कर प्राण भले ही गँवाऊं, किन्तु संधि का नाम तक जिह्वा पर न लाऊंगा।

भीष्म—दुर्योधन, तुम्हारी सुमति पर परदे पड़े हुए हैं, दुर्बुद्धि-पूर्ण विचार तुम्हारे हृदय में गड़े हुए हैं। शकुनी और दुःशासन इत्यादि खुशामदियों ने तुम्हारे विवेक का नाश कर दिया।

दुर्योधन—(क्रुद्ध होकर) पितामह, आप युद्ध करने आये हैं या उपदेश देने। यदि आप लड़ना नहीं चाहते तो वैसा कहिए, जी चाहे चले जाइये, मुझ पर जो पड़ेगी मैं भुगत लूंगा।

भीष्म—(स्वगत):—

पड़ा है बुद्धि पर परदा समझ में कुछ नहीं आता।
स्वयं ही मृत्यु के मुख में ये है भागा चला जाता॥

(प्रकट) अच्छा, दुर्योधन मैंने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया तुम्हारा जो जी चाहे सो करो।

(दूसरी ओर से शंख की आवाज़ आना)

दुर्योधन—पाण्डवों की सेना युद्ध के लिए मैदान में आ रही है हमको तय्यार होना चाहिए।

(योद्धाओं से) वीरो, तय्यार हो जाओ, अपनी तलवारों की

प्यास लहू से बुझाओ, शत्रुओं को बाणों के फल खिलाओ।
रणक्षेत्र को त्याग शत्रु जाने नहिं पावें।
खड़ग तुम्हारे आज रक्त की धार बहावें॥
अरिदल को क्षण में ही रण में काट गिरावें।
आज पाण्डवों में से कोई लौट न जावें॥
आज तुम्हारी वीरता रण में देखी जायगी।
विजय पताका कौरवों की जग में फहरायगी॥

(अर्जुन, युधिष्ठिर तथा कुछ योद्धाओं का प्रवेश)

अर्जुन—क्या शिखण्डी को अभी बुलाना चाहिए ?

युधिष्ठिर—नहीं, पहले कुछ देर हम युद्ध करेंगे तत्पश्चात् शिखण्डी को बुलायेंगे।

अर्जुन—भाई साहब, होशियार हो जाइये, शत्रु ने आक्रमण शुरू कर दिया।

(दुर्योधन का बाण चलना अर्जुन का भी बाण चलाना। तत्पश्चात् भीष्म का आक्रमण करना, युद्ध का आरंभ हो जाना। अर्जुन की ओर के अनेक योद्धाओं का मारा जाना)

अर्जुन—(लड़ते लड़ते, युधिष्ठिर से) भाई साहब, आज पितामह बड़ी भीषणता से लड़ रहे हैं, शीघ्र शिखण्डी को लाइए।

(युधिष्ठिर का प्रस्थान)

(युद्ध का जारी रहना)

(शिखण्डी सहित युधिष्ठिर का प्रवेश)

युधिष्ठिर—(शिखण्डी) राजकुमार शिखण्डी, इस समय तुम्हारी सहायता का काम है, यदि आज पितामह मारे नहीं जायंगे तो हमारे एक भी योद्धा बचने

नहीं पायेंगे । देखो र पितामह के बाणों ने रणभूमि को लाशों से भर दिया है, सेना की सेनाओं का सुथराव कर दिया । राजकुमार, साहस करो, आगे बढ़ो ।

शिखण्डी—धर्मराज, मु......मु......मुझे त......त......तो डर लगता है ।

युधिष्ठिर—डरने की बात क्या है हम तुम्हारी रक्षा करेंगे ।

शिखण्डी—म......मम......मेरा हृदय बैठा जाता है ।

युधिष्ठिर—क्षत्री पुत्र होकर इतना डरते हो, लज्जा की बात है । चलो आगे बढ़ो ।

(शिखण्डी डरता डरता भीष्म के सामने जाता है)

भीष्म—(शिखण्डी को देखकर) कौन शिखण्डी ! (स्वगत) पाण्डवों ने मेरी बात का तात्पर्य समझ लिया था । (प्रकट) स्त्री पर हथियार चलाना मेरा धर्म नहीं, दुर्योधन, मैं अस्त्र-त्याग करता हूं ।

(अस्त्र-शस्त्र फेंक देना)

दुर्योधन—हैं, हैं, पितामह यह क्या, हथियार क्यों फेंक दिये । आज तो हमारी जय हो रही है ।

भीष्म—यदि मुझ से युद्ध कराना चाहते हो तो मेरे सामने से शिखण्डी को हटाओ, यह स्त्री है, मैं इस पर हथियार नहीं चलाऊंगा ।

दुर्योधन—ऊंह, इस ज़नाने शिखण्डी को हटाना क्या बात है अभी लीजिए ।

(दुर्योधन शिखण्डी पर आक्रमण करता है । अर्जुन

और युधिष्ठिर दुर्योधन से युद्ध करते हैं, दुर्योधन अर्जुन के बाणों से घबड़ा कर पीछे हटता है)

दुर्योधन—पितामह, गाण्डीव के बाणों को सहन करने की मुझ में शक्ति नहीं।

(इधर भीष्म को अस्त्र-शस्त्र फेकते देख शिखण्डी का साहस बढ़ जाता है, और वह भीष्म पर बाणों की वर्षा करता है)

अर्जुन—शाबाश शिखण्डी हां, इसी प्रकार किये जाओ वार।

(शिखण्डी के बाणों की चोट भीष्म हँस हँस कर सहन करते हैं।)

भीष्म—अरे इन ज़नाने हाथों के बाण, मेरे प्राण नहीं ले सकते।

युधिष्ठिर—(अर्जुन से) अर्जुन, शिखण्डी के पीछे से तुम वार करो।

(अर्जुन शिखण्डी के पीछे खड़े होकर वार करते हैं)

भीष्म—(बाण की चोट खाकर) हां, यह बाण हैं अब मुझे मालूम हुआ कि किसी ने बाण मारा। यह शिखण्डी के धनुष से निकले हुए तीर नहीं हैं, यह अवश्य गाण्डीव से निकले हुए शर हैं। शिखण्डी के पीछे निस्सन्देह अर्जुन धनुर्धर हैं।

(बाणों की चोट खा कर भीष्म गिर जाते हैं)

तीसरा अङ्क।

छठवां दृश्य।

(स्थान-सीताराम का घर)

(सीताराम और चञ्चला का लड़ते हुए आना)

चंचला—बस बस, अब मैं कदापि इस घर में न रहूंगी, आज ही भाई को लेकर मायके चली जाऊंगी।

सीताराम—क्या कहा भाई को लेकर मायके चली जाओगी ?

चंचला—हां मायके चली जाऊंगी।

सीताराम—तो क्या सदा के लिए चली जाओगी, या केवल कुछ दिनों के लिए ?

चंचला—मालूम हो जायगा।

सीताराम—बस चले तो काले-पानी भिजवा दूं। अरी, मालूम तो मुझे अभी से हो रहा है।

चंचला—न कुछ करना, न धरना, बैठे बैठे बातें बनाना और कोई कुछ समझावे-बुझावे तो उस की छाती पे चढ़ बैठना।

सीताराम—अब इस समय मैं छाती पे चढ़ रहा हूं या तुम ?

चंचला—भलेमानसों की सी बातें ही नहीं करते।

(गोवर्धन का प्रवेश)

गोवर्धन—क्या बात है ?

सीताराम—(स्वगत) लीजिए जोरू के भाई आ पहुंचे, अब ईश्वर ही कुशल करे।

गोवर्धन—(सीताराम से) क्यों साहब क्या बात है ?

सीताराम—है क्या भाई, तुम्हें देख कर तुम्हारी बहन को अपना घर याद आ रहा है।

गोवर्धन—तो बुराई क्या है ?

सीताराम—कुछ नहीं।

गोवर्धन—आप को मेरी एक बात मानना पड़ेगी।

सीताराम—ओ तेरी न मानूंगा तो किस की मानूंगा तू एक तरफ़ और सारा संसार एक तरफ़।

गोवर्धन—क्या कहा, क्या कहा ?

सीताराम—तेरी बात अवश्य मानूंगा।

गोवर्धन—आप इन्हें मेरे पास भेज दीजिए।

सीताराम—भेज तो दूं पर यहां चूल्हे से कौन लड़ेगा।

चंचला—(बिगड़ कर) मैं तुम्हारी कोई लौंड़ी बाँदी नहीं हूं जो रोटियां थोप थोप कर खिलाऊं।

सीताराम—(गोवर्धन से) अब इसे कुछ न कहोगे ? घर भर ने मुझे ही फ़ालतू समझ रक्खा है। बस चले तो काले पानी भिजवा दूं।

गोवर्धन—ठीक तो कहती हैं।

सीताराम—हूं, ठीक कहती हैं, भला तुम वहां इस से रोटियां न पकवाओगे तो क्या मोटर पर बिठा कर छावनी की हवा खिलाओगे ?

गोवर्धन—(चंचला से) सुना क्या कहते हैं ?

चंचला—अजी इन की ऐसी ही ऊटपटाँग बातें होती हैं।

गोवर्धन—अच्छा मैं तो कल चला जाऊंगा।

सीताराम—कहां जाओगे, क्या करोगे ?

गोवर्धन—जाकर कहीं नौकरी चौकरी की तलाश करूंगा।

सीताराम—फिर वही नौकरी, अरे भले आदमी तुझे नौकरी के अतिरिक्त कुछ और काम नहीं सूझता।

गोवर्धन—और क्या घास खोदूं।

सीताराम—स्वतन्त्रता के क्षेत्र में घास खोदना नौकरी करने से कहीं अच्छा है।

गोवर्धन—यह कैसे ?

सीताराम—कोई व्यापार करो कुछ और करो, नौकरी ! नौकरी भी कोई भले आदमियों का काम है। न जाने आज कल के नवयुवकों का मस्तिष्क किस धातु का बनता है कि उस में नौकरी

करने के अतिरिक्त और कोई विचार ही उत्पन्न नहीं होता । बस चले तो काले-पानी भिजवा दूं ।

गोवर्धन—आप तो वही बाबा-आदम के समय की सी बातें करते हैं । अजी साहब, नौकरी सब से उत्तम उद्योग है । जो निश्चित काम हुआ वह कर दिया, और आराम से घर में पैर फैला कर सोये, हानि-लाभ की कोई चिन्ता नहीं ।

सीताराम—बस, पैर फैला कर ऐसे सोये कि हानि-लाभ की कोई चिंता नहीं । यह मनुष्यों का काम तो है नहीं । गधा भी धोबी की लादी उतार कर आराम से सोता है, उसे भी हानि-लाभ की कोई चिंता नहीं रहती ।

गोवर्धन—वाह, अच्छा उदाहरण दिया, कहां आदमी और कहां गधा !

सीताराम—चिंता के भय से उत्तम उद्योग न करने वाले हानि-लाभ के भय से व्यापार इत्यादि न करने वाले भी गधे ही के तुल्य होते हैं ।

गोवर्धन—यह कहां लिखा है ?

सीताराम—भले आदमियों की नीति में ।

गोवर्धन—व्यापार करने के लिए अनुभव की आवश्यकता है, व्यापार कोई खेल नहीं है ।

सीताराम—तो भइया, अनुभव कहीं खेत से तो कट कर आता नहीं, और न बाज़ार ही में बिकता है । अनुभव तो काम करने ही से प्राप्त होता है ।

गोवर्धन—साहब, साफ़ बात तो यह है कि मुझे नौकरी के अतिरिक्त और कुछ नहीं सुहाता है ।

सीताराम—निस्संदेह, नाली का कीड़ा नाली ही में आनन्द पाता है। बस चले तो काले-पानी भिजवा दूं।

गोवर्धन—आप अंग्रेज़ी नहीं पढ़े, नहीं तो आपको मालूम हो हो जाता कि असल बात क्या है!

सीताराम—जैसी अंग्रेज़ी तुम पढ़े हो, ऐसी अंग्रेज़ी से ईश्वर बचावे।

गोवर्धन—इसका क्या अर्थ?

सीताराम—यह पढ़ना तो तोता-रटन्त सा है।

गोवर्धन-वाह, खूब कही!

सीताराम—खूब कही या बुरी कही, किन्तु बात सच्ची कही। इस पढ़ने से इसके अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं कि अंग्रेज़ी कपड़े पहनने का चसका लग जाता है, चुरुट पीने की चाट पड़ जाती है और अंग्रेज़ी से गिटगिट करने का अवसर मिला करता है।

गोवर्धन—और?

सीताराम—और कहीं सौ-पचास की नौकरी मिल गई तो कुरसी पर बैठने को मिलता है। घूस लेने के ढंग याद हो जाते हैं।

गोवर्धन—(मुसकराकर) और कुछ?

सीताराम—अपने भाइयों को बन्दर-घुड़की दिखाना आ जाता है और विदेशियों को ईश्वर समझने का पाठ मिलता है।

गोवर्धन—बस?

सीताराम—स्वामि-भक्ति दिखाने के लिए अपने भाइयों का का गला काटने में आनन्द आता है।

गोवर्धन—वास्तव में आपकी बातों में कुछ सार अवश्य है। तो आप की इच्छा नहीं कि मैं नौकरी करूं ?

सीताराम—कदापि नहीं।

गोवर्धन—तो फिर क्या करूं ?

सीताराम—तुम्हारी बहिन, रात दिन खर्च की तंगी का रोना रोया करती है, इसलिए आओ हम तुम मिल कर कोई व्यापार करें।

गोवर्धन—व्यापार के लिए तो बहुत रुपया चाहिए।

सीताराम—भला कितना ?

गोवर्धन—जितना ही अधिक हो उतना ही अच्छा।

सीताराम—भाई रुपया तो स्याऊं का ठौर है, ना भाई, यह हमसे न होगा। अच्छा भाई मैंने जो कुछ कहा, वह सब लौटाता हूं। अब जो तेरा जी चाहे कर। बस चले तो काले-पानी भिजवा दूं।

(सीताराम का प्रस्थान, पीछे गोवर्धन का मुसकराते हुए प्रस्थान।)

तीसरा अंक।

सातवां दृश्य।

स्थान—रणभूमि।

[रणभूमि में भीष्म शरशय्या पर लेटे हैं। पास अर्जुन और दुर्योधन और कुछ योद्धा खड़े हैं]

दुर्योधन—पितामह, मैंने बड़े बड़े निपुण वैद्य और जर्राह बुलवाये हैं, वह शीघ्र ही आपके शरीर से बाण निकाल कर मरहम-पट्टी करेंगे।

भीष्म—दुर्योधन, तुम यह क्या कह रहे हो। हमें दवा-दारू की कोई आवश्यकता नहीं। क्षत्रियों को जिस गति की इच्छा होती है, वही वीर-गति हमें मिली है। ऐसी वीरगति को त्याग कर जीने की इच्छा करना कायरों का काम है। हां, एक कष्ट हमें अवश्य है और वह यह है कि हमारा सिर ख़ाली है, हमारे लिए एक तकिया लाओ।

दुर्योधन—(अपने एक साथी से) जाओ, शीघ्र मखमली कामदार तकिया लाओ।

भीष्म—दुर्योधन, ठहरो, मख़मली तकिये की हमें आवश्यकता नहीं—तुम हमको तकिया नहीं दे सकते (अर्जुन से) बेटा अर्जुन, तुम हमें एक तकिया दो।

अर्जुन—(स्वगत) मैं समझ गया, पितामह का तात्पर्य कुछ और है।

(धनुष उठा कर भीष्म के सिर में एक वाण मारता है भीष्म का सिर ऊंचा हो जाता है)

भीष्म—अर्जुन, हम तुम से बड़े प्रसन्न हुए। निस्संदेह वाणों की शय्या के साथ वाणों ही का तकिया होना चाहिए। हां, अब हमें थोड़ा पानी पिलाओ।

दुर्योधन—जाओ, पितामह के लिए सोने के पात्र में शीतल जल लाओ।

भीष्म—दुर्योधन, हमें सोने के पात्र में शीतल जल की आवश्यकता नहीं (अर्जुन से) बेटा अर्जुन, तुम हमको पानी पिलाओ।

(अर्जुन भूमि पर वाण मारता है, भूमि फोड़ कर जल की धार निकलती है और भीष्म के मुँह में पड़ती है।)

भीष्म—आह! इसी जल के लिए मेरा हृदय व्याकुल था।

दुर्योधन—पितामह, अब हमारे लिए क्या आज्ञा होती है।

भीष्म—दुर्योधन, हम को हमारे पिता ने इच्छा-मृत्यु का वरदान दिया था, इस कारण जब तक हम इच्छा न करेंगे उस समय तक हमारे प्राण न निकलेंगे। अभी सूर्य दक्षिणायण हैं इस कारण हम अभी प्राण न छोड़ेंगे, जब सूर्य उत्तरायण होंगे तब यह शरीर त्याग करेंगे। जब हमारे प्राणान्त हो जांय उस समय इस शरशय्या सहित हमारा दाह-कर्म्म करा देना, बस हमारा तुम से केवल इतना ही कहना है। बस, अब तुम लोग जाओ और विश्राम करो।

(सब भीष्म के पैर छूकर शोक करते हुए जाते हैं।)

तीसरा अंक।

आठवां दृश्य।

स्थान-राज-भवन का एक भाग।

[कृष्ण और युधिष्ठिर का प्रवेश]

युधिष्ठिर—वासुदेव, तुम्हारी सहायता और ईश्वर की कृपा से युद्ध का तो अन्त हो गया, अब हमारा क्या कर्तव्य है यह कृपा कर के हमें बतलाओ।

कृष्ण—धर्मराज, अब तुम्हारा कर्तव्य यही है कि राज्य-सिंहासन पर बैठ कर प्रजा को सुख पहुंचाओ। धर्म की सदा जय होती है, तुम धर्म पर स्थिर रहे, अत-एव युद्ध में तुम्हारी ही जय हुई। कौरव अधर्म करते रहे इस लिए उन की हार हुई। जिस धर्म-बल से तुम

ने इतना बड़ा समर जीता, उसी धर्म-बल से प्रजा का हृदय जीतो।

युधिष्ठिर—किन्तु माधव, मेरा हृदय तो राजसिंहासन पर बैठने की इच्छा नहीं करता।

कृष्ण—युधिष्ठिर, यदि यह केवल तुम्हारे स्वार्थ की बात होती तो तुम्हारी इच्छा का कुछ मूल्य भी होता, किन्तु यह तो प्रजा के हित की बात है, प्रजा के दुख सुख का प्रश्न है इस में अपनी इच्छा पर दृष्टि रख कर काम करना अन्याय है। तुम को तो अब केवल प्रजा के हित पर ध्यान धरना चाहिए, जिस से उसे सुख मिले वही करना चाहिए।

युधिष्ठिर—आप का यह कथन तो यथार्थ ही है।

(नारद मुनि का प्रवेश)

गाना।

नारद—रे मन भज ले हरि को नाम।
अंत समय एक राम नाम बिन कोई न आवै काम॥ रे मन०

अंतरा—धन-दौलत और कुटुम कबीला भूठा सब व्यवहार,
भवसागर के पार करन को राम नाम आधार॥ रे मन०

युधिष्ठिर—पधारिये, मुनिवर पधारिये, आज का दिन धन्य है जो आपने अपनी चरण-रज से इस कुटीर को पवित्र किया।

कृष्ण—मुनिवर प्रणाम।

नारद—विजयी हो, राजन्।

कृष्ण—कहिये आज कैसे पधारे?

नारद—वासुदेव, सूर्य उत्तरायण हो गये, अब भीष्मपितामह

शीघ्र ही शरीर छोड़ने वाले हैं अतएव हे धर्मराज आप को उचित है कि बहुत शीघ्र उन के पास जाकर उन से राजनीति का ज्ञान प्राप्त कर लीजिए। भीष्मपितामह का राजनीति ज्ञान बड़ा ऊंचा है, उन से बढ़ कर राजनीतिज्ञ आप को नहीं मिलेगा।

युधिष्ठिर—मुनिवर, आप ने बड़ी कृपा की जो हमें यह सूचना दी, वास्तव में पितामह बड़े राजनीतिज्ञ हैं, मैं उन से अवश्य राजनीति के तत्व पूछूँगा।

नारद—बस राजन्, मैं केवल यही सूचना देने के लिए आया था, अब चलता हूं।

(प्रस्थान)

कृष्ण—धर्मराज, अब देर करना उचित नहीं, शीघ्र पितामह के पास चलिए।

युधिष्ठिर—चलिए, किन्तु···

कृष्ण—किन्तु क्या ?

युधिष्ठिर—माधव, मुझे तो उन के सामने जाते बड़ी लज्जा मालूम होती है।

कृष्ण—यह क्यों ?

युधिष्ठिर—मैंने अपने कुटुम्बियों, गुरुओं तथा भाई-बन्धुओं को युद्ध में मारा है, इस कारण उन के सामने क्या मुँह लेकर जाऊं। वह मुझे देख कर घृणा करेंगे।

कृष्ण—धर्मराज, यह तुम्हारा भ्रम है, वह घृणा करने के बदले तुम से प्रसन्न ही होंगे, तुम वहां तक चलो तो।

युधिष्ठिर—(ठंडी सांस लेकर) अच्छा चलिये।

(दोनों का प्रस्थान)

तीसरा अंक ।

नवां दृश्य ।

स्थान—रण भूमि-शर शय्या पर लेटे हैं ।

(कृष्ण और युधिष्ठिर का प्रवेश युधिष्ठिर अलग खड़े रहते हैं)

कृष्ण—(शर शय्या को देख कर) आहा, क्षत्रियों के लिए कितनी सुन्दर गति ! वीर-आंखों के लिए कितना मनोहर दृश्य ! (भीष्मपितामह के पास जाकर) हे कौरव-नाथ, अपने गुरु, कुटुम्बियों तथा भाई-बन्धुओं को मारने के कारण युधिष्ठिर बड़े लज्जित हैं और इस लिए आपके पास आने का साहस नहीं करते ।

भीष्म—वासुदेव, जिस प्रकार ब्राह्मणों का धर्म दान देना वेद पढ़ना तथा तपस्या करना है उसी प्रकार क्षत्रियों का धर्म युद्ध में शत्रुओं का संहार करना है । क्षत्रिय को युद्ध ही के द्वारा यश, धर्म और स्वर्ग मिलता है । धर्मराज का पश्चाताप करना व्यर्थ है । तुम उनको समझा-बुझाकर मेरे पास लाओ ।

कृष्ण—जो आज्ञा ।

(कृष्ण धर्मराज युधिष्ठिर को शरशय्या के पास ले जाते हैं ।)

युधिष्ठिर—(भीष्म के चरण पकड़ कर) पितामह, मैं आप से बड़ा लज्जित हूं ।

भीष्म—वत्स, लज्जित होने का कोई कारण नहीं, तुमने वीर क्षत्रियों का धर्मपालन किया है इस कारण हम तुम्हें हृदय से आशीर्वाद देते हैं ।

युधिष्ठिर—हे पितामह, युद्ध समाप्त हो चुका है और अब सब लोग हमसे राज्य करने के लिए कहते हैं ।

किन्तु हमारे लिए यह कार्य बड़ा कठिन जान पड़ता है, इस लिए अब आप बताइये कि हमारा कर्तव्य क्या है?

भीष्म—वत्स, राजाओं के लिए प्रजा-पालन ही परम धर्म है, इस कारण तुम राज सिंहासन पर बैठ कर प्रजा-पालन करो। सदैव प्रजा का हित सोचना, प्रजा के प्रतिकूल कभी कोई कार्य न करना। जो राजा प्रजा को सुखी रखते हैं वह स्वयम् सुखी रह कर संसार में यश पाते हैं और जो राजा प्रजा को दुखी रखते हैं वह स्वयम् दुखी रह कर संसार में अपकीर्ति कमाते हैं। तुम प्रजा को अपना मित्र बनाने की चेष्टा करना। प्रजा को मित्र बनाने की यही युक्ति है कि उनके स्वार्थ पर ध्यान रखना उनके स्वार्थ के आगे अपने स्वार्थ को तुच्छ समझना। प्रजा की इच्छा के विरुद्ध उनको अपने स्वार्थ की ओर घसीटने से उन में अशांति फैलती है, जो राजा के लिए बड़ी हानि-कारक होती है। प्रजा की अशांति की आग को अपने क्रोध से बुझाने की चेष्टा कभी न करना। प्रजा की अशांति उसी समय दूर होती है जब राजा उनका मित्र बनकर उनकी भलाई के काम करता है। यदि तुम इस प्रकार कार्य करोगे तो निश्चय प्रजा के प्रेम पात्र बनकर सुख और यश पाओगे।

युधिष्ठिर—पितामह, अब यदि आपकी आज्ञा हो तो हम हस्तिनापुर चले जांय।

भीष्म—अवश्य चले जाओ। सूर्य उत्तरायण हो गये हैं। हम शीघ्रही देह-त्याग करेंगे। अतएव तुम शीघ्र

आकर हमारे दाह-कर्म का प्रबन्ध कर देना।

युधिष्ठिर—अच्छा तो अब आज्ञा दीजिए।

भीष्म—जाओ वत्स हम आशीर्वाद देते हैं कि तुम यशस्वी राजा बनकर प्रजा का पालन करो।

(युधिष्ठिर तथा कृष्ण का प्रस्थान)

× × × ×

(शर-शय्या का गायब हो जाना, दृश्य का स्वर्ग में बदल जाना। विष्णु भगवान् का दर्शन, द्यौवसु का भगवान् के चरणों में गिरते दिखाई देना।)

ड्राप

[तीसरा अंक समाप्त।]

गणेश शङ्कर विद्यार्थी द्वारा "प्रताप" प्रेस
कानपुर में मुद्रित।

प्रताप-पुस्तक-माला।

१—मेरे जेल के अनुभव।

इस पुस्तक के लेखक हैं महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधी। दक्षिण अफ्रिका में रहते समय गांधी जी को कई बार जेल जाना पड़ा था। जेल में रह कर उन्हें जो अनुभव प्राप्त हुए हैं उन्हीं का इसमें वर्णन है। मुख-पृष्ठ पर गांधी जी का एक चित्र (जेल जाने के समय का) दिया गया है। मू० ॥)

२—देवी जोन।

अर्थात् स्वतन्त्रता की मूर्ति।

फ्रांस को दासता की शृङ्खला से मुक्त कर देने वाली वीर-बाला जोन आव आर्क की जीवनी। देवी जोन को उस के शत्रुओं ने उस के देश-प्रेम के लिए ही उसे जीते जी चिता में जला दिया था। मुख-पृष्ठ पर देवी जोन के चिता में जलते समय का रोमांचकारी दो रंग का चित्र दिया गया है। ... ... मू० ॥)

३—भारत के देशी राष्ट्र।

देशी राज्यों पर यह पुस्तक अपने ढंग की पहली ही पुस्तक है। सभी पत्र-सम्पादकों ने इस की प्रशंसा की है। इस में देशी रियासतों का ईष्ट इण्डिया कम्पनी के पहले से लेकर आज तक का ब्योरेवार वृत्तान्त है। अंग्रेज़ सरकार और इन रियासतों का क्या सम्बन्ध है, इन से कौन २ सन्धियां हुई हैं, रियासतों में कितनी फौजें हैं, उन से क्या काम लिया जाता है, सिपाही विद्रोह क्यों हुआ था, देशी राज्यों का भविष्य आदि बातें विस्तार से लिखी गई हैं। २३४ पृष्ठ की पुस्तक मू० ॥।) मात्र।

४—राष्ट्रीय वीणा ॥)

५—जर्मन जासूस की राम कहानी ।)

६—युद्ध की कहानियां ।)

७—कृष्णार्जुन युद्ध (नाटक) ॥=)

८—भीष्म (नाटक) ॥)

९—फ्रांस की राज्य क्रान्ति (उपन्यास) छप रहा है।

हमारी अन्यान्य पुस्तकें।

हमारा भीषण ह्रास	≡)
कृषक-क्रन्दन	-)॥
कुसुमाञ्जलि	=)
दादा भाई नौरोजी	=)॥
म० रानाडे	=)
चम्पारन की जांच	।-)
स्वराज्य पर मालवीय जी	।)
स्वराज्य पर सर रवीन्द्र	।)
कलकत्ते में स्वराज्य की धूम	।)

स्वराज्य साहित्य-माला।

हम ने प्रताप कार्य्यालय से स्वराज्य साहित्य माला नाम की एक माला निकालना शुरू की है। इस में अब तक ये पुस्तिकायें प्रकाशित हुई हैं:—

१—स्वराज्य	-)॥
२-३—स्वराज्य की आवश्यकता और दुर्बल देश पर भारी बोझ	≡)
४—स्वराज्य-संगीत	=)
५—स्वराज्य की व्याख्या	≡)
६—स्वराज्य की कसौटी	=)
७—स्वराज्य का सन्देश	-)
८—स्वराज्य-नाद	-)
९—मिसेज़ बीसेंट का अन्तिम पत्र	-)
१०—स्वराज्य की लहर	=)
११—स्वराज्य पर गांधी जी	=)

मेनेजर, 'प्रताप'—कानपुर।